मनुस्मृतिः
१

९०





#5432


H. E. PRINCE RAM SINGH,
J MBOO.

9

म॰
स्मृ॰टी
भा॰
१

ॐश्रीगणेशायनमः बड़े बड़े ऋषि लोगों मे सक
ल वेदार्थ आदिक को चिन्तन करनहार जो नि
श्चल्ल वैठे थे मनु ऋषि तिसके समीप जाकरके
और विधिसे प्रति पूजन करके इस वातको पू
छा इस स्थान पर प्रति शब्दमे यह जाना जा॰
ताहै कि प्रथम मनु ऋषि ने सब ऋषियों
को आसन देके पूछा कि सुन्दर प्रकार से आ

ॐमनुमे काग्र मासीन मभि
गम्य महर्षयः प्रति पूज्यय
था न्याय मिदं वचनमब्रवी
न् १

प यह पूछना पू   जन हुआ फेर ऋषि
यों मे मनु ऋषि का पूजन किया यह प्रति
पूजन भया अब इहां ऐसी शंका होतीहै
कि ग्रंथको समाप्ति और विघ्न का नाश यह
दो वातके लिये ग्रंथके आदि मध्य अन्त मे ॰
वस्तु कथन रूप अथवा आशीर्वाद रूप वा
नमस्कार रूप यह तीन प्रकार के मंगलहे
इसमें कोई एक मंगल वड़े लोग करतेहैं तो



इस स्थान पर कौन मंगलभया जिसका समाधा
न यह है कि संसारके पालन के लिये परमात्मा
सर्वज्ञता और ऐश्वर्य आदि गुण से युक्त मनुरूप
होके उत्पन्न भये जिसका नामोच्चारण मंगल
है सो आगे मनुजी बारहवें अध्याय मे कहेंगे
कि मनुजी को कोई मनु कोई अग्नि कोई प्रजा
पति कोई इन्द्र कोई प्राण कोई नित्य परब्रह्म ॥

भगवन्सर्ववर्णानां यथा वद
नु पूर्वशः अन्तर प्रभवानां
च धर्मान्नो वक्तु मर्हसि २

कहतेहैं १ कि हे भगवान अर्थात् ऐश्वर्य ॥
आदि छः गुणसे युक्त सो विष्णु पुराण मे कहा
है कि संपूर्ण ऐश्वर्य और वीर्य यश श्री ज्ञान
वैराग्य ये सब जिसमे रहै सो भगवान कहता
है ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र यह चारों वर्णों
के और अनुलोम प्रतिलोमोंके अर्थात् ऊंच बी
ज से नीच योनी मे हुआ सो अनुलोम कहता
है और नीच बीज से ऊंच योनि मे हुआ सो प्रति

म॰
स्मृ॰टी
भा॰
१

2

लोम कहाता है जैसे ब्राह्मण से क्षत्रिया कन्या में भया यह अनुलोम है और क्षत्रिय से ब्राह्मणी कन्या में भया यह प्रतिलोम है इसी प्रकार से दूसरी जात में भी जानना ये सब वर्ण संकर हैं इन्हों के धर्म को क्रम से ठीक ठीक हम लोगों से कहिये २ क्यों कि

त्वमेकोह्यस्य सर्वस्य वि॰ धानस्य स्वयंभुवः अचिन्त्यस्या प्रमेयस्य कार्य्यतत्वा॰ र्थवित्प्रभो ३ ॥

हे प्रभु अचिन्त्य १ अर्थात् चिंता करने योग्य नही और अप्रमेय अर्थात् इतना है इस के योग्य भी नही और स्वयंभु अर्थात् आप से भया ऐसा जो वेद तिस में लिखित जो ज्योतिष्टोमादि यज्ञ और ब्रह्म ज्ञान उस के अर्थ के जाननहा॰ र केवल आप ही हैं ३ ॥

तब उन महात्माओं ने इस प्रकारसे उस महा
त्मा तेजस्वी से यह प्रश्न पूछा तब श्री मनुजी
ने उस सब महर्षियों की पूजा करके कहा ।
कि सुनिये ४ यह सब जगत प्रथम प्रकृति ।
मे लीन रहा और प्रकृति भी ब्रह्म स्वरूप हो।
कर नाम रूपसे रहित थी और प्रत्यक्ष अनुमा

सतैः पृष्टस्तथा सम्यगमि
तौ जामहात्मभिः प्रत्युवा
चार्च्य तान्सर्वा न्महर्षीन्
श्रूयता मिति ४ ॥

न शब्द यह तीन प्रमाण है इन प्रमाणों से न
ही जाना गया क्यों कि देख नही पड़ता था औ
र लक्षण अर्थात चिह्न सो भी न रहा और वेद
भी प्रकट न रहा उस समय में और अपने का
र्य मे असमर्थ की नाई रहा ४ ॥ इस मे यह ।

मं॰
स्तु॰टी॰
भा॰
३

3

प्रश्न हो सकता है कि ऋषि लोगों ने धर्म की बात पूछी और मनु ने उत्तर दिया कि यह जगत ऐसा रहा सो कैसे बने तो इसका उत्तर यह है कि जगत का कारण ब्रह्म है तिस का कथन धर्म ही है इस बातको मनु जी आगे कहेंगे धृति क्षमा दम अस्तेय शौच इन्द्रिय निग्रह धी विद्या सत्य अक्रोध यह दश धर्म का लक्षण

आसीदिदं तमो भूत मप्र॰
ज्ञातम लक्षणम् अप्रतर्क्य
मविज्ञेयं प्रसुप्त मिव सर्व
तः ५

है इस मे विद्या अर्थात आत्म ज्ञान सो धर्म ही है महा भारत में भी लिखा है कि आत्मज्ञान और तितिक्षा अर्थात क्षान्ति यह दो सब का धर्म है और याज्ञवल्क्य ऋषि ने भी कहा है कि योग करके आत्माका दर्शन यह तो परम धर्म है व्यासजी ने ब्रह्म मीमांसा के प्रथम सूत्र में ॰

कहा है कि ब्रह्म के जानने की इच्छा करना
चाहिये दूसरे सूत्र मे ब्रह्म का लक्षण कहने
के लिये यह कहा कि जिससे जगत की उत्प
ति पालन नाश है सोई ब्रह्म है इस प्रकार से
और भी ऋषि लोगों ने कहा है ग्रंथ बढ़ि जा
यगा इस लिये सब कहते हैं ५ इसके उपरा॰
न्त अप्रकट अचल सामर्थ्यवाला और तम का

ततः स्वयंभूर्भगवान व्यक्तो
व्यञ्जयन्निदम् महा भू॰
तादि वृत्तौजाः प्रादुरासी
त्तमो नुदः ६ ॥

नाश करनेहारा परमात्मा भगवान इस महा
भूतादि अर्थात् पृथिवी जल तेज वायु आका॰
श आदि को प्रकाश करता हुआ प्रकट भ॰
या ६ ॥ जो परमात्मा इन्द्रियों से परे सूक्ष्म ॰
अप्रकट नित्य अचिंत्य और सब भूतों का आ॰
त्मा है सोई आप से आप प्रकट हुआ ॥

म॰
स्॰टी
भा॰
४

१ उसके मन में इच्छा भई कि अपने शरीर
से अनेक प्रकार की प्रजा उत्पन्न किया चा

यो सावती न्द्रियग्राह्य १
स्सूक्ष्मो व्यक्त स्सनातनः
सर्व भूतमयो चिन्त्य स॰
एव स्वयमुद्बभौ ७ सोभि
ध्याय शरीरात्स्वा त्सिसृ॰
क्षु र्विविधाः प्रजाः अप
एव ससर्जादौ तासु बी
ज मवा सृजत् ८ ॥

हिये तो उसने पहिले जल को उत्पन्न
किया फिर उस जल में बीज डाला ८ ॥

तब वह बीज सुवर्ण के सदृश और सूर्य के
समान अंड के आकार हो गया फिर उस अंड
मे ब्रह्मा अर्थात् हिरण्यगर्भ संपूर्ण सृष्टि के अ
र्थात् उत्पन्न जो चेतन अचेतनहै तिसके पिता
मह आप से आप उत्पन्न भये ९ नारायण श

तदण्डमभवद्धैमं सहस्रां
शु समप्रभम् तस्मिन् जज्ञे
स्वयं ब्रह्मा सर्व लोक पि
तामहः ९ आपो नारा इ
ति प्रोक्ता आपो वैनरसू
नवः तायदस्यायनं पूर्वं
तेन नारायणः स्मृतः १०

इसका अर्थ कहतेहैं कि जल को नारा कहतेहैं
कारण इस का यह है कि नर परमात्मा का ना
म है और जल परमात्मा का संतति है तो नारा
अर्थात् जल पूर्व मे परमात्मा का गृह था इस लि
ये परमात्मा को नारायण कहते हैं १० ॥

जो परमात्मा सब का कारण अप्रकट नि-
त्य कारण कार्य स्वरूप है इसने जिस पुरु-
ष को उत्पन्न किया इसी को संसार में लो-

यत्तत्कारणमव्यक्तं नि-
त्यं सदसदात्मकम् तद्वि-
सृष्टः स पुरुषो लोके ब्र-
ह्मेति कीर्त्यते ११ तस्मि
न्नण्डे सभगवानुषित्वा-
परिवत्सरं स्वयमेवात्मनो
ध्यानात्तदण्डमकरोद्द्विधा १२

ग ब्रह्मा कहते हैं ११ इस अंडे में अपने एक
वरस तक रहके और परमात्मा का ध्यान क-
रके इस अंडे का दो भाग किया १२ ॥

इन दोनों खंडों से उस ने स्वर्ग और पृथिवी
को बनाया फिर इन दोनों के बीच में आका
श आठों दिशा और अचल समुद्र को भी र
चा १२ फिर ब्रह्मा ने परमात्मा से संकल्प वि

ताभ्यांस शकलाभ्यांच्च
दिवं भूमिं च निर्ममे मध्ये
व्योमदिशश्चाष्टावपां स्था
नं च शाश्वतम् १२ उद्ब
र्हात्मन श्चैव मनः सद स
दात्मकम् मनस श्चाप्य
हंकार मभिमंतार मीश्व
रम् १४ ॥

कल्प रूप मन को उत्पन्न किया और मनको
उत्पत्ति के पहिले समर्थ और अभिमान कर
ने द्वारा अहंकार को बनाया १४ और अहंका
र के एवं आत्मा का उपकार करनेद्वारा मह

6

तत्व को अर्थात् बुद्धि को और विषयों की अ॰
र्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गंध की ग्रहण कर
ने हारी पंच ज्ञान इन्द्रियों को और तन्मात्रा
अर्थात् शब्द स्पर्श रूप रस गंधों को भी बना

महान्त मेव चात्मानं स
र्वाणि त्रिगुणानि च विष
याणं ग्रहीतृणि शनैः प
ञ्चेन्द्रियाणि च ॥१५॥

या ये सब पदार्थ जो रूप है और जो क॰
हे जायगे सो सब त्रिगुण आत्मक है अर्था॰
त् सतोगुण रजोगुण तमोगुण से युक्त है ॥१५॥

और इन अमित शक्तिमानों के अर्थात् अहंकार तन्मात्रा आदि के सूक्ष्म अवयवों को अपने अपने विकार में अर्थात् तन्मात्रा का विकार पञ्च महाभूत अहंकारका विकार इन्द्रिय मिलाकर के सब भूतों को अर्थात् मनुष्य पशु पक्षी वृक्ष आदि को परमात्मा ने बनाया ।१६। इसके अर्थात्

तेषान्त्ववयवान्सूक्ष्मान् षण्णामप्यमितौजसाम् सन्निवेश्यात्ममात्रासु सर्वभूतानि निर्ममे ॥१६॥ यन्मूर्त्यवयवाः सूक्ष्मास्तस्येमान्याश्रयन्ति षट् तस्माच्छरीरमित्याहुस्तस्य मूर्तिं मनीषिणः ॥१७॥

प्रकृति सहित ब्रह्म के शरीर का जो सूक्ष्म अवयव अर्थात् तन्मात्रा और अहंकार ये सब कथित और वक्ष्यमाण अर्थात् जो कहे जायगे और इन्द्रियें इन्हीं के उत्पन्न करनेवाले हैं इसी कारण से पण्डित लोग ब्रह्मके स्वभाव को शरीर कहते हैं ऐसा ।

म०
स०टी०
भा०
७

लिखा है और जो कहे गए हैं कि जिस मे ये छः अर्थात् तन्मात्रा और अहङ्कार रहे उसको शरीर कहते हैं १७ फिर उस नाश रहित और सब भूत को करन हार ब्रह्म मे अपने अपने कार्य्यों के साथ आकाश आ

तदा विशन्ति भूतानि म-हान्ति सह कर्मभिः म न श्चावयवैः सर्वैः स र्वभूत कृदव्ययम् १८ ।

दि महा भूत और सूक्ष्म अवयवों के साथ मन उत्पन्न भया आकाश का काम अवकाश देना वायु का गति तेज का पाक जल का पिण्डी करण और पृथिवी का धारण और मनका कार्य्य शुभ अशुभ की इच्छा १८

इसके उपरान्त अविनाशी ब्रह्म ने इन सात व
डे पराक्रम रखनेवाले महत्तत्व अहंकार पञ्च ।
तन्मात्राओं की सूक्ष्म भागसे इस विनाशी जग
त को बनाया ॥ इन महा भूतों के मध्य मे पू
र्व पूर्व का गुण पर पर में जाता है जिसकी ।
जैसी संख्या है तिस मे तितना गुण रहता है ।

तेषामिदन्तु सप्तानां पुरुषा
णां महौजसाम् सूक्ष्माभ्यो ।
मूर्ति मात्राभ्यः संभवत्य ।
व्ययाद्व्ययम् ॥ आद्याद्यस्य
गुणन्त्वेषामवाप्नोति परः प
रः यो यो यावतिथश्चैव स
मतावद्गुणः स्मृतः ३ ॥

जैसे आकाश पहिला है उसका एक शब्द ही गु
ण है और वायु दूसरा है उस मे पूर्व का अर्थात्
आकाश का शब्द गुण और निजका स्पर्श गुण
है इसी क्रमसे अग्नि में तीनो गुण अर्थात् शब्द
स्पर्श पूर्व भूतों का और अपना रूप है और जल

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
८

मे रस गुण अपना और पूर्वों का तीन गुण पृ
थिवी मे गंध अपना और पूर्वों का चार गुण
२० फिर परमात्मा ने सब जीवों का नाम औ
र कर्म भिन्न भिन्न जिसका जैसा सृष्टि के पू
र्व मे रहा वैसा ही वेद शब्द से जानके पहि॰

सर्वेषान्तु सनामानि कर्मा
णि च पृथक् पृथक् वेद ।
शब्देभ्य एवादौ पृथक्संस्था
श्च निर्ममे २१ कर्म्मात्मना
ञ्च देवानां सोऽसृजत्प्राणि॰
नां प्रभुः साध्यानां च गणं
सूक्ष्मं यज्ञं चैव सनातनम् २२

ले बनाया जैसे गो जाति का गो नाम रक्खा औ
र अश्व जातिका अश्व ब्राह्मण का कर्म अध्ययन
आदि ठहराया और क्षत्रिय का कर्म प्रजा रक्षण
आदि २१ फिर प्रभुने अर्थात् ब्रह्मा ने देवतों को और
जड़पदार्थों को और सूक्ष्म नित्य यज्ञको उत्पन्न किया २२

तब अग्नि वायु सूर्य से क्रम करके ब्रह्मा ने नि
त्य तीनों वेद को अर्थात् ऋग् यजु साम को नि
काला यज्ञ सिद्धि के लिये २३ तिस पीछे काल
और काल के विभाग अर्थात् वर्ष मास पक्ष दि·
न आदि और अश्विनी आदि नक्षत्र सूर्य आदि
ग्रह नदी समुद्र पर्वत सम अर्थात् सीधा स्थान

अग्निवायुरवि भ्यस्त्रयं ब्र·
ह्मसनातनम् दुदोह यज्ञ·
सिध्यर्थं मृग्यजुः सामल·
क्षणम् २३ कालं कालवि
भक्तीश्च नक्षत्राणि ग्रहांस्त
था सरित स्सागरान् शैला
न्समानि विषमाणि च २४

विषम अर्थात् टेढ़ा स्थान इन सब को बनाया
२४ इनके बनाने के पीछे तप अर्थात् प्राजा·
पत्य आदि वाली रति अर्थात् चित्त का संतोष
इच्छा काम क्रोध इन सब को और जो कहे
॥

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
१

9

जोंयगे देव आदिक प्रजा इनकी बनाने की इच्छा करके बनाया २५ कर्म्मों के प्रकार के जानने के लिये अर्थात् यज्ञ आदि धर्म॰ ब्रह्मवध आदि अधर्म अलग करके इन के

तपोवांच रतिञ्चैव काम
ञ्च क्रोधमेव च सृष्टिं स
सर्ज चैवेमां स्रष्टु मिच्छ
न्निमाः प्रजाः २५ कर्म॰
णाञ्च विवेकार्थं धर्मा
धर्मौ व्यवेचयत् द्वन्द्वैर॰
योजयच्चेमाः सुख दुःखा
दिभिः प्रजाः २६ ॥

सुख दुःखा रूप फलको प्रजाओं के पीछे ल॰ गा दिया आदि शब्द करके काम क्रोध लोभ मोह तृषा पियासा ये सब जोड़ाहै इनको भी प्रजा

पांचो महा भूतों की विनाश होनेवाली सूक्ष्म मा
त्रा जो शब्द स्पर्श रूप रस गंध इन से सम्पूर्ण जग
त क्रम से होता है २७ ब्रह्मा ने जिस जीव को
पूर्व कल्प मे जिस कर्म मे अर्थात् जिस स्वभा-

अण्व्यो मात्रा विनाशिन्यो
दशार्द्धानां तु याः स्मृताः
ताभिस्सार्द्धमिदं सर्वं संभ
वत्यनुपूर्वशः २७ यन्तुक
र्मणि यस्मिन्स न्ययुङ्क्त प्र
थमं प्रभुः स तदेव स्वयं भे
जे सृज्यमानः पुनः पुनः
२८ ॥

व मे लगाया रहा वही जीव फिर उत्पत्ति स-
मय मे उसी कर्म मे आप से आप लगा २८
हिंसा अहिंसा कोमलता कठोरता धर्म्म अधर्म्म
सत्य झूठ इनमे से पूर्व कल्प मे जिसका जो क-

में ब्रह्मा ने बनाया था वही कर्म्म आप से आप
इस जीव को प्राप्त भया जैसे सिंह हाथी को ।
मारता है और मृग किसी को नहीं मारता है
ब्राह्मण का कोमल स्वभाव और क्षत्रिय का क्रू
र स्वभाव धर्म जैसे ब्रह्मचारी को गुरु सेवा अध
र्म जैसे ब्रह्मचारी को मांस मैथुन की सेवा बड़

हिंस्राहिंस्रे मृदुक्रूरे धर्माध
र्मावृतानृते यद्यस्य सोऽद ।
धात्सर्गे तत्तस्य स्वयमावि
शत् २९ यथर्त्तुलिङ्गान्यृ
तवः स्वयमेवर्त्तुपर्यये स्वा
नि स्वान्यभिपद्यन्ते तथा ।
कर्म्माणि देहिनः ३० ॥

या देवतों का सत्य कथन और प्रायः मनुष्यों
का असत्य कथन है २९ जैसे वसन्त आदि ऋतु
अपने अपने कार्य्य के अवसर में अर्थात् समय
में अपने अपने चिह्नों को अर्थात् आम का बौर ।
ना गरमी का पड़ना घटा का उठना आदि आप से
आप पाते हैं तैसे ही जीव हिंसा आदि कर्म्मों के पाते हैं ३०

ह लोक आदिके वढने के लिये मुख बाहु जंघा
चरण इन से क्रम करके ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य
शूद्र को वनाया ३१ फिर ब्रह्मा अपनी शरीर का

लोकानान्तु विवृद्ध्यर्थं मु
खबाहूरुपादतः ब्राह्मणं
क्षत्रियं वैश्यं शूद्रञ्च निर
वर्तयत् ३१ द्विधा कृत्वा
त्मनो देह मर्द्धेन पुरुषो
भवत् अर्द्धेन नारी तस्यां
स विराज मसृजत्प्रभुः
३२

दो भाग करके आधे से पुरुष वना और आधे से
स्त्री वनी इसके पीछे उस समर्थ ने स्त्री से संग
म करके विराट पुरुष को उत्पन्न किया ३२ ॥

म०
स्मृ०टी०
भा०
११

मनु जी कहते हैं कि हे महर्षि लोगो इस विरा
ट पुरुष ने तप करके जिस को बनाया सो मैं
ही हूं यह बात आप लोग जानिये और मैं सब
का उत्पन्न करने वाला हूं ३३ फिर मैं ने प्र०

तपस्तप्त्वा सृजद्यन्तु स ।
स्वयं पुरुषो विराट् तं मो
वित्तास्य सर्वस्य स्रष्टारं ।
द्विजसत्तमाः ३३ अहं प्र०
जाः सिसृक्षुस्तु तपस्तप्त्वा
सुदुश्चरम् पतीन्प्रजाना
मसृजं महर्षीनादितो
दश ३४ ॥

जा की उत्पत्ति की इच्छा करते घोर तपस्या कर
के पहिले दश बड़े ऋषियों को जो प्रजा के
पति हैं तिनको उत्पन्न
किया ३४

उन्हों के नाम ये हैं मरीचि अत्रि अंगिरा पुलस्त्य
पुलह क्रतु प्रचेता वसिष्ठ भृगु नारद १० ३५ इन ऋषि
यों ने सात बडे तेजस्वी मनु को और देवतों को
और देवतों के स्थानों को अर्थात् स्वर्गों को औ
र महा प्रतापी बडे बडे ऋषियों को उत्पन्न ।

मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुल-
स्त्यं पुलहं क्रतुम् प्रचे-
तसं वसिष्ठं च भृगुं नार
दमेवच ३५ देवान्देव ।
निकायांश्च महर्षीन्स्वा-
मितौजसः ३६ ॥

किया मनु शब्द इस स्थान मे अधिकार वाची
है चौदहौ मन्वन्तर के बीच मे जिस मनुका ।
सृष्टि के आदि में अधिकार है उस मन्वन्तर मे
वही मनु कहाता है ३६ ॥

म॰
स्तुती॰
भा॰
१२

12

यक्ष अर्थात् वैश्रवण आदि राक्षस पिशाच
गंधर्व अप्सरा असुर नाग वासुकी आदि स
र्प गरुड आदि और पितरों के समूह को बना
या ३१ इस के पीछे बिजुली बज्र मेघ रो॰

यक्षरक्षः पिशाचांश्च गं
धर्वाप्सरसो ऽसुरान् ना॰
गा न्सर्पा न्सुपर्णांश्च पि॰
तॄणां च पृथग्गणान् ३१
विद्युतो ऽशनिव मेघांश्च
रोहितेन्द्र धनूंषि च उल्का
निर्घात केतूंश्च ज्योतींष्य
च्चाव चानि च ३८ ॥

हित और इंद्र धनुष उल्का अर्थात् लूक का
टूटना केतु और नाना प्रकार के तारागण अ॰
र्थात् ध्रुव अगस्त्य आदि को बनाया ३८ ॥

किन्नर अर्थात् घोड़ मुँहे वानर मत्स्य विविध
प्रकार के पक्षी पशु मृग मनुष्य और डंडेला
सांप को बनाया ३९ फिर बड़े कीड़े छोटे ।

किन्नरान्वानरान्मत्स्यान् ।
विविधांश्च विहंगमान्
पशून्मृगान्मनुष्यांश्च ।
व्यालांश्चोभयतोदतः ३९
कृमि कीट पतंगांश्च यू-
का मक्षिक मत्कुणम् स
र्वं च दंश मशकं स्थावर
ञ्च पृथग्विधम् ४० ॥

कीड़े शलभ ढील मोक्खी ठेंकुण डंस मसा नाना
प्रकार के वृक्ष इन सब को बनाया ४० ॥

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
१३

मनु जी कहते हैं कि इस प्रकार से बड़े २ ऋषियों ने अपनी २ तपस्या के बल से हमारी आज्ञा पाकर जीवों के कर्मानुसार स्थावर जंगम को उत्पन्न किया ॥ जिन जीवों का जै

13

एवमेतै रिदं सर्वं मन्नियोगान्महात्मभिः यथा कर्म तपो योगात्सृष्टं स्थावरजङ्गमम् ॥ येषान्तु यादृशङ्कर्म भूतानामिह कीर्तितम् तत्तथावोभिधास्यामि क्रमयोगञ्च जन्मनि ॥ ॥

सा कर्म इस संसार में पूर्व आचार्यों ने कहा है तिन जीवों का तैसा ही कर्म आप लोगों से हम कहैंगे और जन्म मरण का क्रम भी कहैंगे ॥ ॥
४२

पशु मृग व्याल अर्थात् हिंसक जीव और दोनों ओर दांतवाले रा-
क्षस राक्षस पिशाच मनुष्य ये सब जरायुज हैं
अर्थात् गर्भ का ढांकनेवाला जो चर्म तिनमें
ये सब रहते हैं पीछे उससे निकलतेहैं ४३ ।

पशवश्च मृगाश्चैव व्यालाश्चोभयतोदतः रक्षांसि च पिशाचाश्च मनुष्याश्च जरायुजाः ४३ अण्डजाः पक्षिणः सर्पा नक्रा मत्स्याश्च कच्छपाः यानि चैवं प्रकाराणि स्थलजान्यौदकानि च ४४ ॥

पक्षी सर्प नाक मत्स्य कछुआ ये सब अंडज हैं
अर्थात् अंडे से उत्पन्न होतेहैं और जो इस प्रका
रके स्थलसे अथवा जलसे उत्पन्न हों सो भी
अंडज कहाते हैं ४४ ॥

डंस मसा चील मोखी डंड्डस ये सब गरमी से होतेहै इस लिये स्वेदज कहाते है और अन्य जो ऐसे ऊष्मा से अर्थात गरमी से होते है सो भी स्वेदज कहाते है स्वेद अर्थात पसीना तिस से भए है ४५ स्थावर जितने है सो सब उद्भिज्ज कहाते है अर्थात पृथ्वी को फोड के

स्वेदजं दंशमशकं यूकामक्षिकमत्कुणम् ऊष्मणश्चोपजायन्ते यच्चान्यत् किंचिदीदृशं ४५ उद्भिज्जाः स्थावराः सर्वे बीजकाण्डप्ररोहिणः ओषध्यः फलपाकान्ता बहुपुष्पफलोपगाः ४६

निकलते है इस लिये उद्भिज्ज कहाते है सो दो प्रकार के है कोई बीज से उत्पन्न होतेहै कोई डार लगाने से होते है यव धान आदि ओषधि कहाते है इन सबों का फल जब पका तब नाश को पाते है ये सब बहुत पुष्प फल सहित होतेहै ४६ ॥

जिन में फूल नहीं लगता केवल फल ही ल
गता है उन को वनस्पति कहते हैं जिन मे फू
ल फल दोनों लगते हैं उनको वृक्ष कहते हैं
४१ जिन में मूल से लता समूह उत्पन्न होती
है और बडी शाखा नही होती उनको गुच्छ
कहते है जैसे मालती आदि जनमें फूल एक
है और अंकुर अनेक एकहि उत्पन्न होते है उन

अपुष्पाः फलवंतो ये ते व
नस्पतयः स्मृताः पुष्पिणः
फलिनश्चैव वृक्षा स्तूभय
तः स्मृताः ४१ गुच्छ गुल्म
न्तु विविधं तथैव तृणजा
तयः बीजकाण्डरुहाण्येव
प्रतानावल्य एवच ४८ ॥

को गुल्म बोलते है जैसे ऊख सरहरी और ये अ
नेक प्रकार के होते है और तृण जाति कोई बी
ज से होते हैं कोई डार लगानेसे होतेहै जैसे उत्प
ल आदि अर्थात प्रताना जिन में सूत रहताहै जैसा

लोकी कोहड़ा आदि और वल्ली अर्थात् गुडुच
आदि ४५ इन सब में तमोगुण अधिक रह॰
ताहै इस कारण से भीतर ही सुख दुःख॰

15

तमसा बहुरूपेण वेष्टि॰
ताःकर्महेतुना अन्तस्सं
ज्ञाभवन्त्येते सुखदुःखस
मन्विताः ४४ एतदन्ताः
स्तुगतयो ब्रह्माद्याः समु
दाहृताः घोरेस्मिन्भूतसं॰
सारे नित्यं सतत यायि॰
नि ५०॥

का ज्ञान रहताहै ४४ इस विनाशी घोर॰
संसार में ब्रह्मा से ले कर वल्ली प
र्यन्त जीवों की गति है सो
आप लोगों से हमने कहा ५०॥

इस प्रकार से अचिंत्य पराक्रमी ब्रह्मानें इसको ।
और अपनेको बनाके सृष्टि काल को प्रलयकाल
करके नाश करत हुए लीन भये ५१ जब ब्रह्मा
जागते रहते हैं तब यह जगत देख पड़ता रह

एवं सर्वं सहसृष्ट्वेदं माञ्चाचि
न्त्यपराक्रमः आत्मन्यन्तर्द
धेभूयः कालं कालेन पी
डयन् ५१ यदा सदेवो जा
गर्ति तदेदं चेष्टते जगत
यदा स्वपिति शान्तात्मा
तदा सर्वं निमीलति ५२

ता है और जब वह शांत प्रकाश सोजाता है
तब सब जगत प्रलय
के प्राप्त होता
है ५२ ॥

16

तब ब्रह्मा स्वस्थ होके सोतेहैं तब कर्म्म से प्राप्तहै देह जिसका ऐसा जो जीव श्रौर मन दोनो अपने कर्म्मों से अर्थात् देह धारण से जीव श्रौर संकल्प विकल्प से मन निहत्त होतेहैं अर्थात् ब्रह्मा की यह नित्य प्रलय कहातीहै

तस्मिन्स्वपिति तुस्वस्थे कर्म्मात्मानः शरीरिणः स्वकर्म्मभ्यो निवर्तन्ते मनश्च ग्लानिमृच्छति ५३ युगपत्तुप्रलीयन्ते यदातस्मिन्महात्मनि तदायंसर्वभूतात्मासुखंस्वपिति निर्हृतः ५४

५३ सब एकहि सब जीव उस महात्मा में लीन हो जाता है तब यह सब भूतों का आत्मा सुख पूर्वक आनन्द पाके सोता है अर्थात तब महा प्रलय होती है ५४

अब मरण का प्रकार लिखते हैं इंद्रियों के साथ यह जीव बहुत काल पर्यंत अज्ञान ता में पड कर रहता है और जब अपना कार्य अर्थात् स्वास प्रश्वास नही करता तब पूर्व देह से निकल कर दूसरी देह मे जाता है ५५ और जब कि वही जीव भूत इ

नमो यन्त्र समाश्रित्य चिर निष्ठेति सेन्द्रियः नव संज्ञ हते कर्म नदोत्क्रामतिमन्तिनः ५५ यदाएमात्रिको भूत्वा बीजेस्थावएचरिष्णुच समाविशति संहृष्टस्तदामूर्ति विमुञ्चति ५६

इन्द्रिय मन बुद्धि वासना कर्म वायु अज्ञान इन आठ पुरियों से युक्त होकर स्थावर बीज मे प्रवेश करता है तब वृक्ष आदि रूप शरीर को धारण करता है और जब जंगम बीज मे प्रवेश करता है तब मानुष आदि शरीर को धारण करता है ५६ ॥ ॥

म॰
स्व॰टी॰
भा॰
१७

इसी प्रकार से वह अविनाशी ब्रह्मा जागने से और सोने से इस संपूर्ण चराचर को वारंवार जिलाता है और मारता है ५७ इस शास्त्र को बना

एवं स जाग्रत्स्वप्नाभ्या मिदं॰ सर्वं चराचरम् संजीवयति चाजस्रं प्रमापयति चाव्य॰ यः ५७ इदं शास्त्रन्तु कृ॰ त्वासौ मामेव स्वयमादि॰ तः विधिवद्ग्राहयामास मरीच्यादींस्त्वहं मुनीन् ५८

कर ब्रह्माने प्रथम हम को विधि पूर्वक ब॰ ताया और हमने मरीचि आदि मुनियों को सिखलाया ५८

५८

और अब इस संपूर्ण शास्त्र को भृगु मुनि आप
लोगों को सुनावेंगे क्यों कि इसने हम से इस
शास्त्र को पढाहै ५९ जब इस प्रकार से मनु

एतद्वोऽयं भृगुःशास्त्रं श्रावयि
ष्यत्यशेषतः एतद्धिमत्तोऽधि
जगे सर्वमेषोऽखिलंमुनिः ५९
ततस्तथासतेनोक्तो महर्षि
र्मनुना भृगुः तानब्रवीदृषी
न्सर्वान्प्रीतात्मा श्रूयतामिति
६० स्वायम्भुवस्यास्यमनोः ष
ड्वंश्या मनवोऽपरे सृष्टवन्तः
प्रजाःस्वाः स्वामहात्मानोम
हौजसः ६१ ॥

ने भृगु से कहा तब भृगु प्रसन्न होकर सब ऋषियों
से कहा कि सुनि ६० ब्रह्मा के पुत्र जो मनु तिस
के वंश मे छ मनु और भीहैं उन महातेजस्वी और
महात्माओंने अपने अपने अधिकार मे अपनी अपनी
प्रजा को उत्पन्न किया ६१ ॥

॥

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
१८

तिनके नाम येहैं स्वारोचिष औत्तमि तामस रै वत चाक्षुष वैवस्वत ६२ स्वायंभुव मनु आदि ले ये सातों मनु जो बडे तेजस्वी हैं अपने २ अ धिकार में संपूर्ण चराचर को उत्पन्न करके पा लन करते भये ६३ अब कथितमन्वन्तरमें स

स्वारोचिषश्चोत्तमिश्च ताम
सोरैवतस्तथा चाक्षुषश्च ।
महातेजा विवस्वत्सुतएव
च ६२ स्वायंभुवाद्याः सप्तैते
मनवोभूरि तेजसः स्वेस्वेन्त
रे सर्वमिदमुत्पाद्यापुश्चरा
चरम् ६३ निमेषादशचाष्टौ
च काष्ठात्रिंशत्तुताःकला
त्रिंशत्कलामुहूर्तःस्यादहो
रात्रन्तु तावतः ६४ ॥

ष्टि और प्रलय आदि के काल के परिमाण के । जानने के लिए कहते हैं अठारह पलकी एक काष्ठा होती है और तिस काष्ठा को एक कला औरति सकलाका एक मुहूर्त औरतिस मुहूर्त की एक अहोरात्र

मनुष्य और देवता के रात्रि दिनका विभाग सू र्य करते हैं अर्थात् सूर्य से मनुष्य और देवता के रात्रि दिनके विभाग का ज्ञान होताहै सब जी वों के सोने लिए रात्रि बना है और व्यवहार के

अहोरात्रे विभजते सूर्यो
मानुषदैविके रात्रिः स्वप्ना
यभूतानां चेष्टायै कर्मणा
महः ६५ पित्र्येरात्र्यह
नीमासः प्रविभाग स्तु
पक्षयोः कर्म चेष्टास्वहः
कृष्णः शुक्लः स्वप्नाय
शर्वरी ६६ ॥

लिये दिन बना है ६५ मनुष्य के एक मास के बरा बर पितरों का अहोरात्र होता है उस मे कृ ष्ण पक्ष काम करने के लिये दिनहै शुक्ल प क्ष सोने के लिये रात्रि है ६६

म॰
स्न॰टी॰
भा॰
१९

19

मनुष्य के एक बरस के बराबर देवतों का एक रात दिन होता है तब तक सूर्य उत्तरायण रहे है तब तक दिन है और जब तक दक्षिणायन रहे है तब तक रात्रि है अर्थात् मकर की संक्रांति से लेके मिथुन की संक्रांति तक उत्तरायण क

दैवेरात्र्यहनीवर्षं प्रविभा
ग स्तयोःपुनः अहस्तत्रो
दगयने रात्रिः स्याद्दक्षि॰
णायने ६७ ब्राह्मस्य तु
क्षपाहस्य यत्प्रमाणं समा॰
सतः एकैकशोयुगानां॰
तु क्रमशस्तन्निबोधत
६८

होता है और कर्क की संक्रांति से लेके धन की संक्रांति तक दक्षिणायन कहलाता है ६७ ब्रह्मा के रात्रि दिनका जो प्रमाण है सो और प्रत्येक युगों का जो प्रमाण है सो संक्षेप से और क्रम से जानो ६८

॥

देवतों के चार हज़ार वरसा का सतयुग होता है युग के पूर्व देवतों का चारसौ ४०० वरस संध्या कहलाती है और युग के पर इतना ही संध्यांश कहलाताहै ६९ और तीन युगों का अर्थात् त्रेता द्वापर कलिका इनके संध्या और

चत्वार्याहुः सहस्राणि व र्षाणां तु कृते युगे तस्य तावच्छती संध्या संध्यांश श्च तथाविधः ६९ इतरेषु ससंध्येषु संध्यांशेषु च त्रि षु एकापायेन वर्तन्ते स हस्राणि शतानि च ७०

संध्यांश का परिमाण क्रम से एक सहस्त्र और एक शत के घटाने से होता है अर्थात् ३००० वरस का त्रेतायुग और ३०० वरस संध्या और ३०० संध्यांश और २००० वरस का द्वापरयुग २०० वरस संध्या २०० वरस संध्यांश और १००० वरस का कलियुग १०० वरस संध्या १०० वरस संध्यांश ७० ॥

म॰
स्टी॰
भा॰
२॰

20

यह जो चारो युग का परिमाण कहा इसके बा
रह हजार गुनाका देवतों का युग होता है ७१
और देवतों के हजार युगके बराबर एक दिन
ब्रह्मा का होता है और उतनही रात्रि होतीहै

यदेतत्परिसंख्यात मादावे
व चतुर्युगम् एतद्द्वादश॰
साहस्रं देवानां युगमुच्य
ते ७१ दैविकानां युगाना
न्तु सहस्रं परिसंख्यया ब्रा
ह्ममेकमहर्ज्ञेयं तावती
रात्रिमेवच ७२ तद्वैयुगस
हस्रान्तं ब्राह्मं पुण्य मह॰
र्विदुः रात्रिञ्च तावतीमेव
तेहोरात्रविदोजनाः ७३ ।

७२ ब्रह्मा के एक हजार युगके बराबर परब्रह्म
का एक दिन होता है सो दिन बड़ा पवित्र है
और रात्रि भी इतनही है इस रात्रि दिन के ।
जानने वालों ने यह कहाहै ७३ ॥

वह ब्रह्मा अपने दिन में काम करते है और रात्रि मे सोते है जब जागते है तब संकल्प विकल्प रूप जो मन उसको भू आदि तीन लोकके उत्पत्ति के लिए आज्ञा देते है १४ मन ने ब्रह्मा की आज्ञा पा

तस्य सोऽहर्निशस्यान्ते प्रसुप्तः प्रतिबुध्यते प्रतिबुद्धश्च सृजति मनः सदसदात्मकं १४ मनस्सृष्टिं विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया आकाशं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः १५ आकाशात्तु विकुर्वाणात्सर्वगंधवहः शुचिः बलवान् जायते वायुः सवै स्पर्शगुणोमतः १६ ॥

के आप से आप आकाश को बनाया उसका गुण शब्द है १५ आकाश मे सर्व गंधका पहुंचाने वाला पवित्र बलवान वायु उत्पन्न भया उसका गुण

स्पर्श है १६

म॰
स्॰टी॰
भा॰
२१

वायु से अंधकार के नाश करने द्वारा और प्रका॰
श करने द्वारा ज्योति उत्पन्न भया इसका गुण
रूप है ११ और ज्योति से जल उत्पन्न भया जिस॰
का गुण रस है और जल से पृथिवी उत्पन्न भई ॰

21

वायोरपिविकुर्वाणाद्विरोचि
ष्णुतमोनुदम् ज्योतिरुत्पद्य॰
ते भास्वत्तद्रूपगुण मुच्यते ११
ज्योतिषश्च विकुर्वाणादापो॰
रसगुणाः स्मृताः अद्भ्यो गंध
गुणा भूमि रित्येषा सृष्टि रा
दितः १८ यत्प्राग्द्वादशसा
हस्रमुदितंदैविकं युगम्
तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्त
र मिहोच्यते १९ ॥

जिसका गुण गंध है महा प्रलय के अन्त मे अ
र्थात सृष्टि के आरंभ मे प्रथम से उत्पत्ति का क्रम
यही है १८ जो देवतो का युग है बारह हजार व
रस इसका एकहत्तर गुना एक मन्वन्तर कहाता
है अर्थात एक मनु का अधिकार रहता है १९

असेसे मन्वन्तर और उत्पत्ति संहार इन सब
को खेल वाइके महेश विना परिश्रम ब्रह्मा
वारे वार करते हैं ८० संपूर्ण धर्म चारो चरण से स
त्ययुग मे रहा और सत्य बोलना रहा अधर्म से
कोई उपाय मनुष्य लोग नहीं करते थे ८१ ॥

मन्वन्तराण्यसंख्यानि सृष्टिः
संहार एव च क्रीडन्निवैत
त्कुरुते परमेष्ठी पुनः पु
नः ८० चतुष्पात्सकलो
धर्मः सत्यं चैव कृते युगे
नाधर्मेणागमः कश्चिन्म
नुष्यान्प्रतिवर्तते ८१ इतरे
ष्वागमाद्धर्मः पादशस्त्ववः
रोपितः चौरिकानृतमाया
भि र्धर्मश्चापैतिपादशः ८२

त्रेता आदि तीनों युगों में लोग अधर्म से अर्थात्
चोरी झूठ कपट से उपाय करने लगे इस लिये
धर्म एक एक चरण छूट गया अर्थात् त्रेता मे ती
न चरण का धर्म रहा द्वापर मे दो चरण कलि मे

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
२२

22

एक चरण का रहा ८२ सत्ययुग में सब जीव रोग से रहित रहे और जो मन में संकल्प करते थे सो वह होताथा चार सौ बरस जीते थे और त्रेता आदि तीनों युगों मे आयुष जीवों की एक एक चरण घट जाती है अर्थात् त्रेता में तीन सौ बरस द्वापरमें दो सौ बरस कलि में एक सौ

अरोगाः सर्वसिद्धार्थाश्चतुर्वर्षशतायुषः। कृते त्रेतादिषु ह्येषां वयो ह्रसति पादशः ॥ ८३ वेदोक्तमायुर्मर्त्यानामाशिषश्चैव कर्मणाम्। फलन्त्यनुयुगं लोके प्रभावश्च शरीरिणाम् ॥ ८४ अन्ये कृतयुगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरेऽपरे। अन्ये कलियुगे नृणां युगह्रासानुरूपतः ॥ ८५ ॥

बरस का जीना है ८३ वेदमें मनुष्यों का जो आयुष कहा है और कामना के लिये जो प्रार्थना है मनुष्यों की तिसका फल और मनुष्यों का प्रभाव अर्थात् शाप और आशीर्वाद ये सब जैसा युग होता है तैसाही फलते है ८४ युगके घटने के अनुसार मनुष्यों का धर्म सब युगोंमे भिन्न २ होताहै अर्थात् सत्ययु

सत्य युग में केवल तप प्रधान है त्रेता मे ज्ञान
द्वापर मे यज्ञ कलि मे दान प्रधान है ८६ इस सृ
ष्टि जगत की रक्षा के लिये उस तेजस्वी ब्रह्मा ने मु
मुख बाहु जंघा चरण से क्रम करके उत्पन्न जो ब्रा
दि वर्ण तिन्हो के कर्मको भिन्न भिन्न स्थापन कि

ततःपरंकृतयुगे त्रेतायां
ज्ञानमुच्यते द्वापरे यज्ञमे
वाहुर्दानमेकं कलौयुगे
८६ सर्वस्यास्यतु सर्गस्य गु
प्त्यर्थं समहाद्युतिः मुख
बाहूरुपज्जानां पृथक्कर्मा
ण्यकल्पयत् ८७ अध्यापनं
अध्ययनं यजनं याजनं त
था दानं प्रतिग्रहं चैव ब्रा
ह्मणानामकल्पयत् ८८

या ८७ पढना पढाना यज्ञ करना यज्ञ कराना
दान देना दान लेना ये छ कर्म ब्राह्मण के लि
ए स्थापन किया ८८

म० स्मृ०टी० भा० २२

23

प्रजा का रक्षण करना दान देना यज्ञ करना
पढना और संसार के भोग विलास मे चित्त को
न लगाना ये पांच कर्म क्षत्रिय के लिये संक्षेप
से स्थापन किया ८९ पशुओं की रक्षा दान देना
यज्ञ करना पढना बेपार करना व्याज लेना खेती

प्रजानां रक्षणं दान मिज्या
ध्ययनमेवच विषयेष्व प्रस
क्तिश्च क्षत्रियस्यसमासतः
८९ पशूनां रक्षणं दान मि
ज्याध्ययनमेवच वणिक
पथं कुसीदं च वैश्यस्यकृषि
मेवच ९० एकमेवतु शूद्र
स्य प्रभुः कर्मसमादिशत
एतेषामेव वर्णानां शुश्रू-
षा मनसूयया ९१ ॥

करना ये सात कर्म वैश्यों के लिये ठहराया
९० शूद्र के लिये एक ही कर्म प्रभु ने ठहरा-
या कि निश्छल होकर इन तीनों वर्णों के से-
वा करना ९१ ॥

पुरुष के नाभी के ऊपर के सब स्थान मुख छोड़
के पवित्र हैं और इन सब से मुख तो और भी अ
धिक पवित्र है ये बातें ब्रह्मा ने कहा है ९२ इस
सब सृष्टि मे धर्म करके ब्राह्मण सब से उत्तम
है इस लिये कि अति उत्तम अंग से उत्पन्न है औ

ऊर्द्ध्वंनाभेर्मेध्यतरः पुरुषः
परिकीर्त्तितः तस्मान्मेध्यत
मन्त्वस्य मुखमुक्तं स्वयंभु
वा ९२ उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्यै
ष्ठ्या ब्रह्मणश्चैव धारणात्
सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्म
तो ब्राह्मणः प्रभुः ९३ तं हि
स्वयंभूः स्वादास्या तपस्तप्त्वा
दितोऽसृजत् हव्य कव्याभि
वाह्याय सर्वस्यास्य च गुप्तये
९४

र सब से श्रेष्ठ है औ ४ वेद को धारण कर-
ता है ९३ ब्रह्मा ने प्रथम उसके तप के बल से
अपने मुख से उत्पन्न किया इस लिये कि संपूर्ण स

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
२४

षि की रक्षा करै और देवतों पितरों को मंत्र के बल से हव्य और कव्य अर्थात् देवतों के भाग और पितरों के भाग को पहुंचावे ९४ इस ब्राह्मण से बढके कौन है कि जिस के मुख से देवता

24

यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः कव्यानि चैव पितरः किंभूतमधिकं ततः ९५ भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ९६ ॥ ॥ ॥

लोग हव्य खाते हैं और पितर लोग कव्य खाते हैं ९५ स्थावर जंगम जीव के मध्य में कीट आदि श्रेष्ठ हैं तिन से पशु आदि श्रेष्ठ हैं तिन से मनुष्य श्रेष्ठ हैं तिनसे ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं ९६ ॥

ब्राह्मणों के मध्य मे विद्वान् अर्थात् वेद शास्त्र
के पढने वाले श्रेष्ट हैं तिन से शास्त्र कथित
कर्म के करने में बुद्धि जिस की है सो श्रेष्टहै
तिन से शास्त्रोक्त कर्म करने वाले श्रेष्टहैं ति
न से ब्रह्मज्ञानी श्रेष्टहैं ९७ ब्राह्मण की उत्प

ब्राह्मणेषु च विद्वांसो वि
द्वत्सुकृत बुद्धयः कृत-
बुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु
ब्रह्मवेदिनः ९७ उत्प-
त्तिरेव विप्रस्य मूर्तिर्ध-
र्मस्य शाश्वती सहिध-
र्मार्थ मुत्पन्नो ब्रह्मभूया
य कल्पते ९८ ॥

त्ति जो है सो धर्म की नित्य मूर्ति है ब्राह्मण
धर्म करने के लिये उत्पन्नहै इस लिये मोक्ष
पाने के योग्य होता है ९८ ॥

म० स्मृ०टी० भा० ५५

25

ब्राह्मण जब पृथिवी में उत्पन्न भया तब सब
भूत के आत्मा ईश्वर धर्म रूप भंडार के रक्षा के
लिये ब्राह्मण रूप होकर उत्पन्न भये ९९ जो
कछु कि वस्तु संसार में है सो सब मानो ब्रा०
ह्मणों के निज वस्तु के सदृश है क्यों कि ब्र०

ब्राह्मणो जायमानो हि पृ
थिव्यामधिजायते ईश्वरः स
र्वभूतानां धर्मकोशस्य गु०
प्तये ९९ सर्वंस्वं ब्राह्मण०
स्येदं यत्किंचिज्जगतीगत
म् श्रैष्ठ्येनाभिजनेनेदं स०
र्वं वै ब्राह्मणोर्हति १०० ॥

ह्मा के मुख से उत्पन्न है और सब से श्रेष्ठ है इ
स लिये सब वस्तु का स्वामी ब्राह्मण होने स
कता है यह ब्राह्मणों की प्रशंसा मात्र है क्योंकि
मनु जी ब्राह्मणों को भी चोरी के लिये दंड आगे करेंगे

५

ब्राह्मण अपनी ही वस्तु को भोजन करता है
पहिरता है देता है और ब्राह्मण की दया से ॰
क्षत्रिय आदि भोग करते हैं १०१ उस ब्राह्मण

स्वमेव ब्राह्मणो भुंक्ते
स्वंवस्ते स्वन्ददाति च
आनृशंस्याद्ब्राह्मणस्य
भुञ्जते हीतरे जनाः
१०१ तस्य कर्मविवेका॰
र्थं शेषाणा मनुपूर्वशः
स्वायम्भुवो मनुर्धीमा
निदं शास्त्र मकल्पयः
त् १०२

के कर्मों के और क्षत्रिय आदिके कर्मों के जा॰
नने के लिये स्वयंभू के पुत्र बड़े बुद्धिमान मनु
जी ने इस शास्त्र को बनाया १०२ ॥

पंडित जो ब्राह्मण है सो इस शास्त्र को बहुत य
त्न से पढे शिष्यों कों सुंदर प्रकार से पढावे औ
र क्षत्रिय आदि पढे परंतु पढावे न ९३ इस

26

विदुषा ब्राह्मणेनेद मध्ये
तव्यं प्रयत्नतः शिष्येभ्य
श्च प्रवक्तव्यं सम्यङ्नान्ये
न केनचित् ९३ इदं
शास्त्र मधीयानो ब्राह्म
णः संशितव्रतः मनोवा
ग्देहजैर्नित्यं कर्मदोषै र्न
लिप्यते ९४ ॥ ॥

शास्त्र को जो ब्राह्मण पढता है और व्रत को
करता है मन वाणी देह से जायमान जो कर्म
दोष उस से लिप्त नहीं होता ९४ ॥

और वह ब्राह्मण पापी मनुष्य मे नष्ट जो पंक्ति
है उसको पवित्र करता है और अपने सात पुरु
षों ऊपर के और इतना ही नीचे के पवित्र कर॰
ता है और संपूर्ण पृथिवी को अकेला ही धार॰
ण करसकता है १०५ यह शास्त्र कल्याण का ।

पुनाति पंक्तिं वंश्यांश्च स
प्त सप्त परा वरान् पृथिवी
मपि चैवे मां कृत्स्नामेको
ऽपि सोर्हति १०५ इदं स्वस्त्य
यनं श्रेष्ठ मिदं बुद्धिविव
र्द्धनं इदं यशस्य मायुष्य
मिदं निःश्रेयसं परम् ६

यर है और श्रेष्ट है बुद्धि बढाने वाला है यश
और आयुष्य इन दोनों को हित है और मो॰
क्ष का उपा
य है
१०६

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
२२

इस शास्त्र मे संपूर्ण धर्म्म और कर्म्मो के गुण दो
ष आचार इन सब को कहा है १०७ वेद से क॰
थित और स्मृति से अर्थात् धर्म्म शास्त्र से कथि
त जो आचार है सो परम धर्म्म है इस लिये

27

अस्मिन् धर्म्मोऽखिलेनोक्तो
गुणदोषौ च कर्म्मणाम् च॰
तुर्णा मपि वर्णाना माचार
श्चैव शाश्वतः १०७ आचारः
परमोधर्म्मः श्रुत्युक्तः स्मा
र्त एवच तस्मा दस्मिन्सदा
युक्तो नित्यं स्यादात्मवा॰
न् द्विजः १०८ ॥

जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य अपने हित की इ॰
च्छा चाहै सो इस शास्त्र मे सर्व काल युक्त र॰
है १०८ ॥

आचार रहित जो ब्राह्मण सो वेदके फल को भोग नही कर सकता आचार सहित हो तो संपूर्ण वेद के फल को भोग कर सकता है

आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेद फल मश्नुते आचारे ण तु संयुक्तः संपूर्ण फल भाग्भवेत् १८ एव मा चरतो दृष्ट्वा धर्मस्य मुन यो गतिम् सर्वस्य तपसो मूल माचारञ्जगृहुः परम् १९ ॥

१८ जब मुनियों ने देखा कि धर्म की प्राप्ति आचार ही से होती है तब संपूर्ण तपस्या का मूल जो आचार है उस को धारण किया

१९

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
२८

अब शिष्यों के सुखपूर्वक ज्ञान के लिये जो विषय इस ग्रन्थ में कहे जायगे उनकी अनुक्रमणिका अर्थात् क्रम कहते हैं जगत की उत्पत्ति संस्कार विधि अर्थात् गर्भाधान आदि

28

जगतश्च समुत्पत्तिं संस्कारविधिमेव च व्रतचर्य्यो पचारञ्च स्नानस्य च परं विधिं ॥ दाराधिगमनञ्चैव विवाहानाञ्च लक्षणम् महायज्ञ विधानं च श्राद्ध कल्पञ्च शाश्वतः ॥१२॥

व्रत का आचरण स्नान विधि जो उत्कृष्ट है ॥ स्त्री प्रसंग विवाहों का लक्षण । महा यज्ञ का विधान श्राद्धविधि ॥१२॥

जीविका का लक्षण ब्रह्मचारी का व्रत भक्ष्य अ-
भक्ष्य शौच द्रव्य शुद्धि अर्थात् वस्तुओंकी पवि-
त्र करने की रीति १३ स्त्री के धर्म करने का उपा
य तपस्या मोक्ष संन्यास राजों का धर्म्म सब कार्यों

वृत्तीनां लक्षणं चैव स्नातक
स्य व्रतानि च भक्ष्याभक्ष्यं च
शौचञ्च द्रव्याणां शुद्धिमेवच
॥१३॥ स्त्रीधर्मयोगंतापस्यं मो
क्षं संन्यासमेवच राज्ञश्च ध
र्म्म मखिल कार्याणां च वि
निर्णयम् ॥१४॥ साक्षि प्रश्नवि
धानञ्च धर्म्मं स्त्रीपुंसयो र-
पि विभागधर्म्मं द्यूतञ्च क
ण्टकानाञ्च शोधनम् ॥१५॥

का विचार १४ साक्षियों से पूछने की रीति स्त्री
पुरुष का धर्म विभाग धर्म अर्थात् बांट बखेरा क
रना जुआ खेलने की रीति दुष्टों का दण्ड १५ ।
॥

म. स्मृ.टी. भा. २५

29

वैश्य और शूद्रों के धर्म का करना वर्णसंकरों ।
की उत्पत्ति विपत्ति काल मे वर्णों का धर्म पा-
प छूटनी की विधि ११६ संसार गमन अर्थात्
एक शरीर छोड कर दूसर शरीर में जाना सो

वैश्यशूद्रोपचारञ्च संकीर्णा
नां च संभवम् आपद्धर्मं च
वर्णानां प्रायश्चित्तविधिं ।
तथा ११६ संसारगमनं चै
व त्रिविधं कर्मसंभवम् नि
श्श्रेयसं कर्मणां च गुण
दोष परीक्षणम् ११७ ॥

तीन प्रकार का है उत्तम मध्यम अधम और
यह तीन प्रकार के शुभ अशुभ कर्म से होता
है आत्मज्ञान और कर्मों के गुण दोष की प-
रीक्षा ११७ ॥

११७।

देश जाति कुल पाखंडी अर्थात् वेद में जो चिन्ह नहीं लिखे हैं उसका धारण जो करता है इन सबों का धर्म इन सब बातों को इस ग्रंथमें मनु ऋषि ने कहा है ११८ अब भृगु ऋषि कहते हैं

देशधर्मान् जातिधर्मान्
कुलधर्मांश्च शाश्वतान्
पाषण्डगणधर्मांश्च शा
स्त्रेस्मिन्नुक्तवान्मनुः ११८
यथेद मुक्तवान् शास्त्रं पु
रा पृष्टो मनु र्मया तथेदं
यूय मप्यद्य मत्सका
शा न्निबोधत ११९ ।।

जिस प्रकार से हम ने इस शास्त्र को मनु जी से पूछा और उन्हों ने कहा इसी प्रकार से आप लोग भी हम से जानिए ११९ ।।

म॰
स्म॰टी॰
भा॰
१॰

इति मनुसंहिता भाषाटीकायां कुल्लूक भट्ट व्याख्यानु सारिण्यां श्रीबाहदेवीदयालसिंहकारितायां श्रीमत्कम्पनी संस्कृतपाठशालीयधर्मशास्त्रि गुलजार शर्म्म पण्डित कृतायां प्रथमो

30

इतिमानवे धर्मशास्त्रे भृगुप्रोक्तायां संहितायां प्रथमोध्यायः १ विद्वद्भिः सेवितस्सद्भि र्नित्य मद्वेषरागिभिः हृदयेनाभ्यनुज्ञातो योधर्म्म स्तन्निबोधत १

ध्यायः १ शत्रुता मित्रता से रहित ग्रच्छे पण्डित लोगों ने धर्म्म की सेवा की है ग्रौर वह धर्म्म कल्याण करनेहारा है उस धर्म को हम से जानीए १ ॥ ॥ ॥

फल की इच्छा से कोई काम करना अच्छा न
हीं है क्यों कि उससे बंधन होता है अर्थात् उ
स फल के भोग करने के लिये शरीर धारण
करना पडता है और जो नित्य कर्म है और नैमि
त्तिक है अर्थात् कोई निमित्त पाके होता है
जैसे पुत्र उत्पन्न होने से जात कर्म करना सो
आत्म ज्ञानका सहाय होकर मोक्षके लिये हो

कामात्मता न प्रशस्ता न
चैवेहास्त्य कामता काम्यो
हि वेदाधिगमः कर्मयोग
श्च वैदिकः २ ॥

ता है इस लिये तीन प्रकार के कर्म है एक
नित्य दूसरा नैमित्तिक तीसरा काम्य अर्थात्
कामना के लिये जो कर्म करना सो तीसरा
यह अच्छा नहीं है इसे इच्छा मात्र का निषे
ध नहीं करते क्यों कि वेद स्वीकार और वै
दिक सकल धर्म संबंध इच्छा ही का विष
य है २

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
२१

31

इच्छा यज्ञ व्रत नियम धर्म ये सब संकल्प
से अर्थात् इस कर्म से यह फल होवे ऐसी
बुद्धि से उत्पन्न है । विना इच्छा के कोई क-

सङ्कल्पमूलः कामो वै य-
ज्ञाः सङ्कल्पसम्भवाः व्रता
नियमधर्माश्च सर्वे संक-
ल्पजाः स्मृताः । अकाम-
स्य क्रिया काचि दृश्यते
नेह कर्हिचित् यद्यद्धि कु-
रुते किंचि तत्कामस्य चे-
ष्टितम् ४ ॥ ॥

र्म है नहीं जो कुछ कि करता है सो सब ।
इच्छा ही ।
म॰ ४

फल की इच्छा विना कर्म करे तो मोक्ष को
पाता है और इस लोक मे जो इच्छा करे सो
पाता है ५ संपूर्ण वेद का कहना और वेद के

तेषु सम्यग्वर्तमानो ग-
च्छत्यमरलोकताम् य-
था संकल्पितो श्चेह स-
र्वान्कामान्समश्नुते
५ वेदोऽखिलो धर्ममू-
लं स्मृति शीले च तद्वि-
दाम् आचार श्चैव साधू-
ना मात्मन स्तुष्टि रेव च ६

जानने वालों का कहना और कहना और सा-
धु लोगों का करना और जिस कर्म करने से आ-
पना संतोष हो ये सब धर्म का मूल अर्थात
जड़ है ६

म॰ स्मृ॰टी॰ भा॰ ३२

32

संपूर्ण वस्तु के जानन हार मनु जीने जि॰
स किसी का जो कछु कि धर्म इस ग्रंथ में
कहा है सो सब वेद में है १ ज्ञान रूपी

यः कश्चित्कस्यचिद्धर्मो म
नुना परिकीर्तितः ससर्वो
भिहितो वेदे सर्वज्ञानम॰
यो हि सः १ सर्वन्तु समवे
क्ष्येद निखिले ज्ञानचक्षु॰
षा श्रुति प्रमाणतो विद्वा
न्स्वधर्मे निविशेतवै ८ ॥

नेत्र से संपूर्ण शास्त्र को देखकर वेद को
प्रमाण जान के अपने धर्म में ॰
रहै ८ ॥

॥ ८

वेद मे ग्रोर धर्म शास्त्र मे जो धर्म कहाहै इस धर्म को जो मनुष्य करता है सो इस लोक में कीर्ति को ग्रोर परलोक में बड़े सुख को पाता है ९ श्रुति ग्रोर स्मृति ग्रर्थात् वेद ग्रो

श्रुति स्मृत्युदितं धर्म्म
मनु तिष्ठन् हि मानवः
इह कीर्ति मवाप्नोति
प्रेत्य चानुत्तमं सुखम्
९ श्रुति स्तु वेदो विज्ञे
यो धर्मशास्त्र न्तु वै स्मृ
तिः ते सर्वार्थेष्व मीमां
स्ये ताभ्यां धर्मो हि निर्ब
भौ ९ दोनों के उलटे तर्क
रे धर्म शास्त्र इन
से न विचारना क्यों कि इन्ही दोनों से धर्म निक

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
३३

33

लाहै ९॰ जो मनुष्य वेद वाक्य को तर्क शास्त्र के आश्रय से अप्रमाण मानके श्रुति स्मृति का अपमान करताहै वह नास्तिक है वेद का निन्दा करने वाला है इस को साधु लोग अपनी मंडली से बाहर कर देवै ११ वेद और स्मृति भले

योवमन्येततेमूले हेतुशास्त्राश्रयादद्विजः ससाधुभिर्बहिष्कार्यो नास्तिको वेदनिन्दकः ११ वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्यचप्रियमात्मनः एतच्चतुर्विधंप्राहुःसा॰ क्षाद्धर्मस्यलक्षणम् १२ ।

लोगों का आचार अपने आत्मा का प्रिय ये चारों साक्षात् धर्म के लक्षण हैं जैसे सूर्य के उदय में होम करना और विना उदय मे होम करना ये दोनों बात शास्त्र में लिखे हैं इस में । जो अपने को प्रिय हो सो करना १२ ॥

अर्थ और काम इन दोनों की इच्छा जिसको नहीं है उस को धर्म ज्ञान का विधान करते है और जिस को धर्म जानने की इच्छा है उस को केवल वेद ही प्रमाण है १३ जिस का

अर्थकामेष्वसक्तानां धर्म ज्ञानं विधीयते धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः १३ श्रुतिद्वैधं तु यत्र स्यात् तत्र धर्मावुभौ स्मृतौ उभावपि हि तौ धर्मौ सम्यगुक्तौ मनीषिभिः १४

र्म के करने में दो प्रकार की श्रुति है उस मे दोनों प्रमाण है और दोनों धर्म है इस बात को अच्छे प्रकार से पण्डितों ने कहा है १४ १४ १४

म० स्मृ०टी० भा० २अ

34

सूर्य उदय में और सूर्य के अनुदय में और सूर्य नक्षत्र इन दोनों से रहित काल में होम करना ये तीनों काल होम के लिये वेद में कहे हैं और यह तीनों धर्म ही हैं इस में जो प्रसन्न हो सो करे १५ निषेक अर्थात् स्त्री में गर्भ का स्थापन

उदितेनुदितेचैव समयाध्यु
षितेतथा सर्वथावर्ततेय०
ज्ञ इतीयं वैदकीश्रुतिः १५
निषेकादि श्मशानान्तो ०
मन्त्रैर्यस्योदितोविधिः त०
स्य शास्त्रेधिकारोस्मिं ज्ञेयो
नान्यस्य कस्यचित् १६ ॥

यह प्रथम संस्कार है इस लिये आदि लेके मरण तक जिस को मंत्र से संस्कार होता है अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इन्हीं तीनों वर्णों का इस शास्त्र में अधिकार जानना स्त्री और शूद्र इन दोनों का अधिकार न जानना १६

देवतों की नदी जो सरस्वती और दृषद्वती है इन दोनों के मध्य देश को आर्यावर्त कहते है १७ सब वर्णोंका और वर्णसंकरों का इस देश में जो आचार चला आया है सो सदा

सरस्वती दृषद्वत्यो देव नद्यो यदंतरम् तद्देवनि मितन्देश मार्यावर्त म्प्र चक्षते १७ तस्मिन्देशेय आचारः पारंपर्य्य क्रमा गतः वर्णानो सान्तरा लानो ससदाचार उच्यते १८ कुरुक्षेत्रञ्च मत्स्याश्च पञ्चालाः शूरसेनकाः

चार करता है १८ आर्य्यावर्त के समीप में कुरुक्षेत्र मत्स्य पाञ्चाल शूरसेनक ये सब देश ब्रह्मर्षियों के हैं १९ ॥ १९

म० स्मृ० टी० भा० २।१

35

पृथिवी में सब मनुष्य इस देश में उत्पन्न ब्राह्मणों से अपने अपने चरित्र को जानें २०

एषब्रह्मर्षिदेशोवै आर्या
वर्तादनन्तरः १९ एतद्दे॰
शप्रसूतस्य सकाशादग्र
जन्मनः स्वं स्वं चरित्रं शि
क्षेरन् पृथिव्यां सर्वमान
वाः २० हिमवद्विन्ध्ययो॰
र्मध्ये यत्प्राग्विनशनाद॰
पि प्रत्यगेव प्रयागाच्च ॰
मध्यदेशः प्रकीर्तितः २१

हिमाचल और विंध्याचल का मध्य विनशन के एवं प्रयाग के पश्चिम यह मध्य देश कहलाता है २१

पूर्व समुद्रसे लेके पश्चिम समुद्र तक श्रोर हि
मांचल विंधाचल का मध्य यह आर्यावर्त क
हाता है २२ काला मृग अपने स्वभाव से जि

आसमुद्रात्तुवैपूर्वादासमु
द्रात्तुपश्चिमात् तयोरेवा
न्तरं गिर्योरार्यावर्तंवि
दुर्बुधाः २२ कृष्णसारस्तु
चरति मृगोयत्र स्वभाव
तः सज्ञेयो यज्ञियो देशो
म्लेच्छदेशस्त्वतःपरः २३
एतान्द्विजातयोदेशान्सं
श्रयेरन् प्रयत्नतः ॥

स देश में रहे सो देश यज्ञ करने के योग्य है
इस के परे म्लेच्छ देश है २३ ब्राह्मण क्षत्रिय
वैश्य यत्न पूर्वक इसी देश में रहे श्रोर शूद्र तो

जीविका के कष्ट से जिस देश में चाहै तिस दे
शमें रहै २४ भृगु जी कहते है कि हे ऋषि लो
गो आप से संक्षेप करके धर्म का मूल और स॰
बों की उत्पत्ति इन दोनों को मै ने कहा अब व॰
र्णों के धर्मों को जानिए २५ ॥ ब्राह्मण क्षत्रि

शूद्रस्तु यस्मिन्कस्मिन्वा नि
वसेद्वृत्तिकर्षितः २४ एष
धर्मस्य वो योनिः समासेन
प्रकीर्तिता सम्भवश्चास्य
सर्वस्य वर्णधर्मान्निबोध॰
त २५ वैदिकैः कर्मभिः
पुण्यै निषेकादि र्द्विजन्म
नाम् कार्य्यः शरीरसंस्का
रः पावनः प्रेत्यचेहच २६

य वैश्य इन सबको वेद में कहे जो गर्भाधान
आदि शरीर का संस्कार सो इस लोक में और
परलोक में पवित्र करनहार है इस लिये इन
संस्कारों को करना चाहिए २६ ॥ ॥

गर्भसंस्कार जातकर्म चूडाकरण व्रतबंध इन संस्कारों से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों के बीजका दोष और गर्भ का दोष छूट जाता है २७ वेद का पढना व्रत होम त्रैविद्यनाम का व्रत दे

गार्भैर्होमैर्जातकर्मचौ डमौञ्जीनिबंधनैः वैजि के गार्भिकश्चैनोद्विजाना मपमृज्यते २७ स्वाध्याये नव्रतैर्होमैस्त्रैविद्येनेज्य या सुतैः महायज्ञैश्च य ज्ञैश्च ब्राह्मीयं क्रियते त नुः २८ प्राङ्नाभिवर्द्धना त्पुंसो जातकर्मविधीयते

व ऋषि पितरों का तर्पण पुत्र की उत्पत्ति म हायज्ञ यज्ञ इन सब कर्मों से यह शरीर मो क्षप्राप्ति के योग्य होती है २८ नालच्छेदन के

म० स्मृ० टी० भा० ३७

पहिले जातकर्म होताहै उस मे मंत्र सहित सोना मधु घी लड़का को भोजन कराना पड़ताहै २९ जन्म से इगारहवे दिन में अथवा बारहवें दिन में नामकरण होताहै कदाचित इन दिनों

मन्त्रवत्प्राशनंचास्य हि-
रण्यमधुसर्पिषाम् २९ ।
नामधेयन्दशम्यान्तु द्वा-
दश्यांवास्यकारयेत् पु-
ण्येतिथौमुहूर्तेवा न-
क्षत्रेवागुणान्विते ३० म-
ङ्गल्यंब्राह्मणस्य स्यात् ।
क्षत्रियस्य बलान्वितम्
वैश्यस्य धनसंयुक्तं शूद्र-
स्यतु जुगुप्सितम् ३१ ॥

मे न हुवा तो अच्छी तिथि नक्षत्र शुभ दिन गुण सहित मे करना ३० ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन्हों का नाम क्रम से मङ्गल बल धन निन्दा इस को कहने वाला जो शब्द तिस करके युक्त करना ३१ ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन्हों के नाम के श्रे
त में क्रम से शर्म रक्षा पुष्टि प्रेष्य अर्थात् दा
स इन शब्दों का कहने वाला शब्द रक्खै जैसा
शुभ शर्मा वलशर्मा वसुभूतिः दीनदासः

शर्मवद्ब्राह्मणस्यस्याद्
राज्ञोरक्षासमन्वितम् वैश्य
स्य पुष्टिसंयुक्तं शूद्रस्य
प्रेष्य संयुतम् ३१ स्त्रीणां
सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टा
र्थं मनोहरं मङ्गल्यन्दीर्घ
वर्णान्त माशीर्वादाभिधा
नवत् ३२ चतुर्थे मासि
कर्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं
गृहात् ॥

३१ जो सुख पूर्वक कहा जाय और कठोरता से
रहित अर्थ जिसका खुला मनोहर मंगल और आ
शीर्वाद इन दोनों मे से एक अर्थका कहनेवाला

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
३५

दीर्घ वर्ण अंत में हो ऐसा नाम स्त्रियों का कर
ना चाहिए जैसा यशोदा देवी ३३ चौथी मही
ना में घर से बाहर निकालना छठे महीना में
अन्नप्राशन कराना अथवा जिस महीने में अप॰
ने कुल की रीति हो उस मे करना ३४ ब्राह्मण

षष्ठेऽन्नप्राशनंमासि यद्वे
ष्टंमङ्गलंकुले ३४ चूडाक
र्मद्विजातीनां सर्वेषामे
व धर्मतः प्रथमेऽब्दे तृती
ये वा कर्तव्यं श्रुतिचोद॰
नात् ३५ गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वी
त ब्राह्मणस्योपनायनं ग
र्भादेकादशेराज्ञो गर्भात्तु
द्वादशेविशः ३६ ॥

क्षत्रिय वैश्य इन सबका चूडाकर्म प्रथम वर्ष॰
मे अथवा तीसरे वर्ष मे करना चाहिए यह वे
द की आज्ञा है ३५ गर्भसे अथवा जन्मसे आठवें ग्यार
हवें बारहवें वर्ष मे क्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य इ
नको यज्ञोपवीत करना ३६ ॥

ब्रह्म तेज बल धन इन सबों की इच्छा चाहे तो
क्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य को पांचवें छटवें
आठवें वर्ष में यज्ञोपवीत करे ॥ सोलह बाई
स चौबीस वर्ष तक ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों की

ब्रह्म वर्चसकामस्य कार्य
विप्रस्य पञ्चमे राज्ञोबला
र्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनो
ष्टमे ॥ आषोडशा द्ब्राह्म
णस्य सावित्रे नातिवर्तते
आद्वाविंशात् क्षत्रबंधो रा
चतुर्विंशते विशः ॥ अ
तऊर्द्ध त्रयोप्येते यथा
काल मसंस्कृताः

गायत्री पतित नहीं होती ॥ इस के उपरां
त तीनों वर्ण यज्ञोपवीत से रहित होते हैं औ
र व्रात्य कहाते हैं गायत्री इन्हों की पतित
होती है और भले लोग इन्हों की निन्दा क

म॰
स्म॰टी॰
भा॰
३९

३९

होते हैं ३९ इन्हों के साथ कोई संबंध पढ़ने प॰ ढ़ाने का अथवा विवाह आदि का न रखें जब तक ये लोग प्रायश्चित न करें ४॰ अब तीनों व र्णों के ब्रह्मचारियों का चर्म आदि सब कहते

सावित्रीपतिताव्रात्या भव
न्त्यार्यविगर्हिताः ३९ नैतै
रपूतैर्विधिवदापद्यपिहि क
र्हिचित् ब्राह्मान्यौनांश्च
संबंधा नाचरेद्ब्राह्मणः सह
४॰ कार्ष्णरौरवबास्तानि च॰
र्माणि ब्रह्मचारिणः वसी
रन्नानुपूर्व्येण शाणक्षौमा॰
दिकानि च ४१ ॥ ✣

हैं काला मृग हरिण बकरा इन सबों के चर्म को क्रम से ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ऊपर के अंग में धारण करें और सन तीसी भेड़ इन सबों के सूत से जो वस्त्र होता है उसको नीचे अंग में रखें ४१

ब्राह्मण को मूञ्ज की मेखला अर्थात् करधनी
सो कैसी रहै कि तीन लर की बराबर चिक्कन
और क्षत्रिय को मूर्वा अर्थात् इसी नामका तृ-
ण विशेष है उसके हुई लरकी वैश्य को सन
के सूत की तीन लर की ४२ मूञ्ज मूर्वा सन

मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा
कार्या विप्रस्य मेखला क्ष-
त्रियस्य तु मौर्वी ज्या वैश्य-
स्य शणतान्तवी ४२ मुञ्जा-
लाभे तु कर्तव्याः कुशाश्म-
न्तकबल्वजैः त्रिवृता ग्र-
न्थिनैकेन त्रिभिः पञ्च-
भिरेव वा ४३ ॥

ये तीनों न मिलें तो कुश अश्मन्तक अर्थात् ब-
हेरा बल्वज अर्थात् बगई इन्हों की करना तीन
लर की एक वा तीन अथवा पांच गेठिका कर-
ना जैसा कुलका आचार चला आया हो तैसा
करना यह नहीं कि ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये

म॰
स्कं॰टी॰
भा॰
४॰

लोग क्रमसे एक तीन पांच ग्रंथिका रखें ४४ कपास का जनेऊ ब्राह्मण को सन का क्षत्रिय को भेड की रोम का वैश्य को सो कैसा करना कि तिगुना करके फेर तिगुना करना ४४ ब्रा

40

कार्पासमुपवीतंस्याद्विप्रस्योर्द्धवृतंत्रिवृत् शणसूत्रमयंराज्ञो वैश्यस्याविकसौत्रिकम् ४४ ब्राह्मणो बैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ पैलवौदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्मतः ४५ ॥ ॥

ह्मण बेल का अथवा पलास का दंड धारण करे क्षत्रिय वर का अथवा खैर का वैश्य पील का अथवा गूलर का ४५ ॥ ॥

केश मस्तक नासिका तक देहको क्रमसे ब्राह्म
ण क्षत्रिय वैश्य धारण करे ॥ सब देह कोमल
और छिद्रसे रहित सुंदर त्वचा सहित रहै और

केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः
कार्यः प्रमाणतः ललाट
सम्मितो राज्ञः स्यात्तु नासा
न्तिको विशः ॥ ऋजवस्
ते तु सर्वे स्युरव्रणाः सौम्य
दर्शनाः अनुद्वेगकरा नॄ
णां सत्वचो नाग्निदूषिताः
॥ प्रतिगृह्येप्सितं दण्डं
मुपस्थाय च भास्करम्

मनुष्यों के अनुद्वेग करने वाला और अग्नि कर
रके दूषित रहै ॥ दण्ड धारण करके सूर्य
का उपस्थान करके अर्थात् सूर्य के संमुख

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
४२

होके अग्नि को प्रदक्षिण करके विधि पूर्वक भि
क्षा मांगे ४८ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य ये तीनों वर्ण
के ब्रह्मचारी भिक्षा मांगने की वाक्य में क्रम से ।
प्रथम मध्यम अंत में भवत् शब्द को कहै ४९ ।

41

प्रदक्षिणंपरीत्याग्निं चरेद्भै
क्षं यथाविधि ४८ भवत्
र्वं चरेद्भैक्ष उपनीतो द्वि॰
जोत्तमः भवन्मध्यस्तु राज
न्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरः ।
४९ मातरं वा स्वसारं वा मा
तु वा भगिनीं निजाम् ।
भिक्षेत भिक्षां प्रथमं या
चैनं नवमानयेत् ५० ।

माता भगिनी मौसी इन्हों से प्रथम भिक्षा मां
गे और जो ब्रह्मचारी का अपमान न करै उस
से भी मांगे ५० ॥ ५० ॥

निश्चल होकर भिक्षा मांग के गृह के समीप जावे इस के अनन्तर आचमन करके पवित्रता से पूर्व मुख बैठकर भोजन करे ॥ पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर इन दिशों की ओर मुख कर।

समाहृत्य तु तद्भैक्षं यावदर्थममायया। निवेद्य गुरवेऽश्नीयादाचम्य प्राङ्मुखः शुचिः ॥ आयुष्यं प्राङ्मुखो भुङ्क्ते यशस्यं दक्षिणामुखः श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुङ्क्ते ऋतं भुङ्क्ते उदङ्मुखः ॥ उपस्पृश्य द्विजो नित्यमन्नमद्यात्समाहितः ॥

भोजन करने से क्रम करके आयुष्य यश लक्ष्मी सत्य इन्हों की वृद्धि होती है ॥ प्रति दिन प्रकाश अर्थात् निश्चिन्त होके आचमन करके

भोजन करै और फेरभी भोजन करके आचमन
करै और इन्द्रियों को जल से छूवै ५३ प्रति दिन
अन्न का पूजन करै और अन्न की निन्दा न करै
अन्न को देख कर प्रसन्न होवै और हर्ष करै हम

भुक्त्वाचोपस्पृशेत्सम्यगद्भि
खानिच संस्पृशेत् ५३ पूज
येदशनं नित्यमद्याच्चैतद
कुत्सयन् दृष्ट्वा हृष्येत्प्रसी
देच्च प्रतिनन्देच्च सर्वशः
५४ पूजितं ह्यशनं नित्यं
बलमूर्जं च यच्छति अ
पूजितं तु तद्भुक्तमुभयं
नाशयेदिदम् ५५ ॥

को यह अन्न नित्य मिले ऐसा कहके भोजन क
रै ५४ अन्न की पूजा करनेसे सामर्थ्य अर्थात् तेज
और वीर्य अर्थात् इन्द्रिय शक्ति ये दोनों बढते हैं
और विना पूजा करने से वही दोनों का नाश होता है ५५

झूठ किसी को न देना सायंकाल और प्रातःका
ल के मध्य में भोजन न करना अर्थात् तीन बे
र न भोजन करना अति भोजन अर्थात् बहुत
भोजन न करना झूठ हुए से ते कहीं न जाना

नोच्छिष्टं कस्यचिद्दद्या न्ना
द्याच्चैव तथान्तरा नचैवा
त्यशनङ्कुर्यान्न चोच्छिष्टः
क्वचिद्व्रजेत् ५६ अनारोग्य
मनायुष्य मस्वर्ग्यञ्चातिभो
जनम् अपुण्यं लोकविद्वि
ष्टं तस्मात्तत्परिवर्जयेत् ५७
ब्राह्मेन विप्रस्तीर्थेन नित्य
काल मुपस्पृशेत् ॥

५६ अति भोजन आयुष्य आरोग्य स्वर्ग पुण्य इन
सबों को हित नहीं है और लोक मे निंदित है
इस लिये अतिभोजन नहीं करना ५७ ब्रह्मती
र्थ से नित्य ही ब्राह्मण आचमन करे देवतीर्थ ।

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
धर

43

पितृतीर्थ प्रजापतितीर्थ से आचमन न करे ५८ अंगुष्ठ तर्जनी कनिष्ठिका इन तीनों का मूल क्रम से ब्रह्मतीर्थ पितृतीर्थ प्रजापतितीर्थ कहा ता है हाथ का अग्र देवतीर्थ है ५९ प्रथम।

कायत्रैदशकाभ्यांवान पि त्र्येण कदाचन ५८ अंगुष्ठ मूलस्य तल ब्राह्मतीर्थं प्रचक्षते कायमङ्गुलिमूले ग्रेदैवंपित्र्यंतयोरधः ५९ त्रिराचमेदपःपूर्वंद्विः प्रमृज्या ततो मुखम् खानिचै व स्पृशेदद्भिरात्मानं शिर एवच ६० ॥

तीन बेर आचमन करना दोवार मुख दोना मु खमे जो इन्द्रिय है अर्थात् नाक कान आंख मुख इन सबोंको जल से छूना शिर और हृदय इन्होंको भी ६०

पूर्व मुख अथवा उत्तर मुख होकर फेन से रहि
त शीतल जल से सर्वकाल एकान्त मे पवित्र
ता की इच्छा करता हुआ आचमन करै ॥ ब्रा॰
ह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन सबों के आचमन ॰

अनुष्णाभिरफेनाभिरद्भिस्ती
र्थेन धर्मवित् शौचेप्सुः स॰
र्वदाचामेदेकान्ते प्रागुदङ्
मुखः ॥ हृद्गाभिः पूयते ॰
विप्रः कण्ठगाभिस्तु भूमिपः
वैश्योद्भिः प्राशिताभिस्तु शू
द्रः स्पृष्टाभिरन्ततः ॥ उ
द्धृते दक्षिणे पाणा उपवी॰
त्युच्यते द्विजः ॥

करने में जलका प्रमाण यह है कि क्रमसे हृ॰
दय कण्ठ मुख मध्य जिह्वा ओष्ठ तक जल प्रवे॰
श करै ॥ बायें कंधे मे जनेऊ रहने से उपवीती

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
४४

अर्थात् सव्य कहाता है दहिने कंधे मे रहने से प्राचीन आवीनी अर्थात् अपसव्य कहाता है कंठ मे रहने से निवीनी कहाता है ४३ मेखला चर्म दंड जनेऊ कमंडलु ये सब नष्ट हो जावे तो जल

44

सव्ये प्राचीन आवीति निवी
ती कण्ठसज्जने ४३ मेखला
मजिनन्दण्ड उपवीते कमं
डलम् अप्सुप्रास्य विनष्टा॰
नि गृह्णीतान्यानिमन्त्रवत्
४४ केशान्तः षोडशे वर्षे
ब्राह्मणस्य विधीयते राज॰
न्यबंधो द्वाविंशे वैश्यस्य द्व
यिकेततः ४५ ॥

में डाल देना और नवीन मंत्र सहित ग्रहण कर ना ४४ ब्राह्मण को केशान्त कर्म गर्भ से सोरह वें वर्ष में होता है क्षत्रिय को वही कर्म बाईसवें वर्ष मे और वैश्यको चौबीसवें वर्ष में ४५

ये सब संस्कार स्त्रियों के मन्त्र रहित करना परंतु
जिस काल मे जिस क्रम से कहा है उसी काल
में उसी क्रम से करना ६६ स्त्रीयों के विवाह सं॰
स्कार मंत्र सहित है पति की सेवा यही गुरु कु

अमंत्रिकातु कार्येयं स्त्रीणा
मावृदशेषतः संस्कारार्थं ॰
शरीरस्य यथाकाले यथा॰
क्रमम् ६६ वैवाहिको विधि
स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृ
तः पतिसेवा गुरौवासो गृ॰
हार्थोऽग्नि परिक्रिया ६७ एष
प्रोक्तो द्विजातीनां मौपना॰
यनिको विधिः ॥

ल में वास है गृह का काम काज यही अग्नि ॰
की सेवा है ६७ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य का जने
ऊ की विधि कहा यह विधि पुण्य है इसमें ज
न्म का जनाने वाला है अर्थात् इस कर्म से

म॰
स्स॰टी॰
भा॰
४५

दूसरा जन्म होता है इसके उपरान्त कर्म योग को
जानो ६८ शिष्यों का जनेऊ कराके पहिले पवित्र
ता आचार अग्नि का सेवा संध्योपासन अर्थात् संध्या
करने की रीति इन सब को गुरु सिखलावे ६९ शा

45

उत्पत्तिब्रह्मकः प्रायः कर्म
योगन्निबोधत ६८ उपनीय
गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौच
मादितः आचार मग्निकार्यं
ञ्च संध्योपासनमेवच ६९
अध्येष्यमाणस्त्वाचान्तो यथा
शास्त्र मुदङ्मुखः ब्रह्माञ्जलि
कृतोध्याप्यो लघुवासा
जितेन्द्रियः ७० ॥

स्त्र की रीति से पठन समय में आचमन कर उत्त
र मुख से ब्रह्माञ्जली कर अर्थात् हाथ जोड़ कर
जितेन्द्रिय होके छूटा वस्त्र पहिर कर शिष्य र
है ७० ॥ ७०

प्रति दिन पाठ के प्रारंभ में और समाप्ति में आप
ने दोनों हाथ से गुरु के दोनों पाद को ग्रहण
करे हाथ का जोड़ना ब्रह्माञ्जली कहते है ७१
गुरु के संमुख होकर दहिने हाथ से दहिने पा

ब्रह्मारंभे वसानेच पादौग्राह्यौ
गुरोः सदा संहत्य हस्ता
वध्येयं सहि ब्रह्माञ्जलिः
स्मृतः ७१ व्यत्यस्तपाणिना
कार्यं मुपसंग्रहणं गुरोः स
व्येन सव्यः स्प्रष्टव्यो दक्षि
णेनचदक्षिणः ७२ अध्येष्य
माणन्तु गुरु र्नित्यकाल
मतन्द्रितः ॥ ॥

दको और बांए हाथ से बांए पाद को ग्रहण क
रें ७२ शिष्यों के पढाने के समय में गुरु ऐसा
बोलि कि अधीष्वभो अर्थात् पढो तब शिष्य
पढे और जब कहे कि विरामोस्तु अर्थात व

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
४६

स करो तब शिष्य चुप रहे इसका तात्पर्य यह है कि गुरु की आज्ञा से पढे और चुप रहे ७२ प्रतिदिन पाठ के प्रारंभ में और समाप्ति में प्रणव अर्थात ओंकार को कहे और न कहे तो पढा भूल जाता

46

अधीष्व भो इति ब्रूयाद्विरामो ऽस्त्विति चारमेत ७२ ब्राह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा स्रवत्यनोंकृतं पूर्वं परस्ताच्च विशीर्यति ७४ प्राक्कूलान्पर्युपासीनः पवित्रैश्चैव पावितः प्राणायामैस्त्रिभिः पूतस्तत ओंकारमर्हति ७५ ॥

है ७४ पूर्व दिशा में कुशा का अग्रभाग करके उसपर बैठकर पवित्र मंत्र से पवित्र होकर तीन बार प्राणायाम करे तब ओंकार कहने के योग्य होता है ७ ५

अकार उकार मकार इन तीनों अक्षरों के और
भूः भुवः स्वः इनको भी ब्रह्मा ने तीनों वेदमे अ
र्थात् ऋग्यजुस्साम से निकाला ॥६॥ इन्ही तीनों
वेद से एक एक पाद गायत्री का ब्रह्मा नें नि

अकारञ्चाप्युकारञ्च मका
रञ्च प्रजापतिः वेदत्रया-
न्निरदुहद्भूर्भुवः स्वरितीति
च ॥६॥ त्रिभ्यएवतु वेदेभ्यः
पादम्पादमदूदुहत् तदि-
त्यृचोऽस्याः सावित्र्याः परमे-
ष्ठी प्रजापतिः ॥७॥ एतद-
क्षर मेतांञ्च जपन् व्याहृ-
ति पूर्विकाम् ॥

काला ॥७॥ ॐ भूः भुवः स्वः इसको और गायत्री
के तीनों पाद को दोनों संध्या मे जप करे वे
द पढने वाला ब्राह्मण तो संपूर्ण वेद के पु-

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
४२

47

ए मे शुद्धहोवे ७८ बाहर जाके हजार बार इन्हीं
तीनों को पढे तो एक महीना मै बड़े पाप से ॰
छूटे जैसे केंचुर से सांप छूटताहै ७९ अपने का

संध्ययोर्वेदविद्विप्रोवेदपु॰
ण्येनयुज्यते ७८ सहस्रकृ॰
त्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं
द्विजः महतोप्येनसोमासा
त्त्वचेवाहिर्विमुच्यते ७९ एत॰
येयाविसंयुक्तः कालेचक्रि
यया स्वया ब्रह्मक्षत्रियवि
ड्योनि र्गर्हणांयाति साधुषु
८०

ल मे जो ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य यह तीनों से रहि
त है सो साधु लोगों मे निन्दा को पाते हैं
८० ॥
८०

यही तीनों अर्थात् ॐ भूः भुवः स्वः गायत्री वेदः
का मुख है और परमात्मा के मिल ने का द्वारहै
पर जो मनुष्य आलस्य को छोड कर तीन वर्ष

ॐकारपूर्विकास्तिस्रो महा
व्याहृतयोऽव्ययाः त्रिपदा
चैव सावित्री विज्ञेयं ब्रह्म
णोमुखम् पर योधीतेऽहन्य
हन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रि
तः सब्रह्म परमभ्येति वायु
भूतः खमूर्तिमान् पर एका
क्षरं परंब्रह्म प्राणायामः प
रन्तपः सावित्र्यास्तु परं

तक प्रति दिन यही तीनों को पढे सो वायु
रूप होकर ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त होवे पर ॐ
यह परं ब्रह्म है प्राणायाम अर्थात् वायु का

म॰ रोकना यह परम तप है गायत्री से बड़े कोई न
स्मृ॰टी॰ ही है चुप रहने से सत्य बोलना अच्छा है पर
भा॰ जो संपूर्ण किया वेद में लिखी है सो सब वि॰
४८

नास्ति मौनात्समंविशिष्ट
ते पर तरन्ति सर्वा वैदिक्यो
जुहोति यजति क्रियाः अ॰
क्षरे दुष्करे ज्ञेय ब्रह्मचैव
प्रजापतिः ८४ विधियज्ञा
जपयज्ञो विशिष्टोदशभिः
र्गुणैः उपांशुः स्याच्छतगुण
सहस्रो मानसः स्मृतः
८५

नाक्षर सहित है और ॐकार रूप जो ब्रह्म

है सो अविनाशी है ८४ यज्ञ से दस गुण अधिक ज
पे है सो उपांशु अर्थात पास के रहनेवाली भी न सुनै
करे सो सुन पावे से सव गुन अधिक है और मनमें जप
करे ओंठ न हिलने पावे सो उपांशु से हजार गुन अधिक है ८५

जो पाक यज्ञ चार हैं अर्थात् वैश्वदेव होम बलि
कर्म नित्य श्राद्ध अतिथि भोजन और विधी यज्ञ
अर्थात् अमावस्या पूर्णमासिके होम आदि ये स
ब जप यज्ञ के सोलहवें भाग भी नहीं पासकः

येपाकयज्ञाश्चत्वारो विधियः
ज्ञसमन्विताः सर्वेतेजपयज्ञ
स्य कलांनार्हंति षोडशीम्
८६ जप्येनैवतु संसिध्येद्ब्रा॰
ह्मणो नात्र संशयः कुर्या
दन्यन्नवाकुर्यान्मैत्रो ब्राह्म
ण उच्यते ८७ इन्द्रियाणांवि
चरतां विषयेष्वपहारिषु ।

ते ८६ ब्राह्मण सब जीव से मित्रता रावे अ॰
र्थात् यज्ञ करने में हिंसा होती है इसको ॰
न करै केवल जप ही को करे तो सब सिद्धि
होती है ८७ अपने अपने विषयों मे इन्द्रियों

को रोके अर्थात् रूप रस गंध स्पर्श शब्द ये पां॰
चो विषयों मे नेत्र जिह्वा नासिका त्वचा कर्ण ये
पांचो इन्द्रिय लगने न पावें जैसे सारथी अश्वाल
मे घोडा को रोकता है ॥ जो पूर्व पंडितों ने प॰

मेयमेयत्नमातिष्ठेद्विद्वान्यन्तेववाजिनाम् ॥ एकादशेन्द्रियाण्याहुर्यानिपूर्वे मनीषिणः तानिसम्यक्प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ॥८९ श्रोत्रंत्वक्चक्षुषी जिह्वा नासिकाचैवपंचमी पायूपस्थंहस्तपादं वाक्चैवदशमी स्मृता ९० ॥

कादश इंद्रिय कहाहै तिन सब को ठीक ठीक क्र
मसें कहैंगे ॥८९ श्रोत्र त्वक् चक्षु जिह्वा नासिका
पायु उपस्थ हस्त पाद वाणी तिसमें पायु अर्थात्
मार्ग उपस्थ अर्थात् भग लिंग ९० ॥

इन सबों में पहिली पांच ज्ञान इन्द्रिय कहाती हैं दूसरी पांच कर्म इन्द्रिय कहाती हैं ॥९१॥ इग्यारहवां मन है अपने गुण करके दोनों अर्थात् ज्ञान इन्द्रिय और कर्म इन्द्रिय कहाता है जिस

बुद्धीन्द्रियाणि पञ्चैषां श्रो-
त्रादीन्यनुपूर्वशः कर्मेन्द्रि-
याणि पञ्चैषां पाय्वादीनि
प्रचक्षते ॥९१॥ एकादशं मनो
ज्ञेयं स्वगुणेनोभयात्मकं
यस्मिन् जिते जितावेतौ भ
वतः पञ्चकौ गणौ ॥९२॥
इन्द्रियाणां प्रसङ्गेन दोषमृ-
च्छत्यसंशयम् ॥

मन के जीतने से ये सब दशाव जीते हैं ॥९२॥ इन्द्रियों के प्रसंग से जीव दोषी होता है और इन्द्रियों का निग्रह करे अर्थात् विषयों में न लगावे तो

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
५॰

जीव सिद्धि को पाता है ५३ जिस वस्तु मे मन की इ
च्छा है उस वस्तु के मिलने से मन को तृप्ति हो ।
सो कभी नही होती जैसे घी को पाके अग्नि बढ़॰
ती ही है ५४ जिस मनुष्य को मन का इच्छित प

सन्नियम्य तु तान्येव ततः सि॰
द्धिं नियच्छति ५३ न जातु का
मः कामानामुपभोगेन ।
शाम्यति हविषा कृष्णवर्त्मे
व भूय एवाभिवर्द्धते ५४ य
श्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान्यश्चैता
न्केवलांस्त्यजेत् प्रापणात्
सर्वकामानां परित्यागो ।
विशिष्यते ५५ ॥

दार्थ सब मिलता है और जो मिले हुए पदार्थों
को त्याग करता है इन दोनों मे त्याग करनेवाला
बड़ा है ५५ ॥

विषयों की सेवा विना किए इन्हों का त्याग नहीं
होता किन्तु इन्हों मे दोष देखने से त्याग होता है
९९ जिसका स्वभाव दुष्ट है उस को वेद त्याग य
ज्ञ नियम तप ये सब सिद्धि को नहीं दे सकते

न तथैतानि शक्यन्ते सन्नियन्तुमसेवया विषयेषु प्रजुष्टानि यथाज्ञानेन नित्यशः ९९
वेदास्त्यागश्च यज्ञाश्च नियमाश्च तपांसि च न विप्रभावदुष्टस्य सिद्धिं गच्छन्ति कर्हिचित् ९७ श्रुत्वा स्पृष्ट्वा च दृष्ट्वा च भुक्त्वा घ्रात्वा च यो नरः

९७ जो मनुष्य सुन के छूके देख के भोग करके सूंघ के न हर्ष को पाता और न इसके विना शोक को पाता सो जितेन्द्रिय कहाता है ९८

म॰
स्म॰टी॰
भा॰
५१

51

सब इन्द्रियों मे से एक भी इन्द्रिय अपने विषय मे
लगी तो जीव की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है जैसे।
चलने से पानी का निकालना ९९ उपाय सेम

नहृष्यतिग्लायतिवा सवि-
शेषोजितेन्द्रियः ९८ इन्द्रि-
याणान्तु सर्वेषां यद्येकं क्ष
रतीन्द्रियम् तेनास्यक्षरति
प्रज्ञादृतेःपात्रादिवोदकम्
९९ वशेकृत्वेन्द्रियग्रामं सं-
यम्यचमनस्तथा सर्वान्संसा
धयेदर्थान् नक्षिण्वन्योगत-
स्तनुम् १०० ॥

व इन्द्रियों को और मन को बस करके जिस मे
शरीर को दुःख न होने पावे ऐसी रीति से सब
अर्थों को सिद्धि करै १०० ॥

प्रातःकालमें गायत्री का जप करता रहे जब तक
सूर्य का दर्शन न होवे और इसी रीति से सायंका
ल में जब तक तारा का दर्शन न होवे ९१ प्रातः
काल की संध्या करने से रात्रि का पाप छूटता है

एवं संध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावि
त्रीमार्कदर्शनात् पश्चिमां
तु समासीनः सम्यगृक्षवि
भावनात् ९१ एवं संध्यां
जपंस्तिष्ठेन्नैशमेनो व्यपोह
ति पश्चिमां तु समासीनो
मलं हन्ति दिवाकृतम् ९२
न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपा
स्ते यस्तु पश्चिमाम् ॥

और सायंकाल संध्या करने से दिन का पाप छूट
ता है ९२ जो मनुष्य दोनों काल की संध्या को
नहीं करता है सो शूद्र की न्याई संपूर्ण द्विज क
र्म से बाहर निकल जाता है ९३ ॥

वनमें जाकर जलके समीप नित्य विधिकरके नि
श्चिंत होके केवल गायत्री को पढ़ें ४ वेदके जो
अंगहैं अर्थात् शिक्षा कल्प व्याकरण निरुक्त ।

स शूद्रवद्बहिष्कार्य्यः सर्व्व॰
स्माद्विजकर्म्मणः १०३ अपां॰
समीपे नियतो नैत्यिकं वि
धि मास्थितः सावित्री मप्य
धीयीत गत्वारण्यं समाहि॰
तः १०४ वेदोपकरणे चैव
स्वाध्याये चैव नैत्यके नानु॰
रोधोस्त्यनध्याये होममंत्रेषु
चैवहि १०५ ॥

ज्योतिष छंद और जो नित्य कर्महैं होमके मंत्र॰
हैं इन सबोंमे अनध्यायका आदर नहीं है १०५

जो नित्य कर्म में मंत्र पढे जाते हैं सो अनध्याय ।
भी पढ़ने ही हैं ९६ जो मनुष्य एक वर्ष तक वि॰
धि पूर्वक पवित्र हो कर नित्य ही वेद को पढ॰
ता है इस को वही वेद नित्य ही दूध दही घी ।

नैत्यकेनास्त्यनध्यायो ब्रह्म॰
सत्रं हि तत्स्मृतम् ब्रह्माहुति
हुतंपुण्य मनध्यायवषट्॰
कृतं ९६ यः स्वाध्यायमधीते
ब्दं विधिना नियतः शुचिः ।
तस्य नित्यं क्षरत्येष पयोद॰
धिघृतं मधु ९७ अग्नीन्धनं॰
भैक्षचर्य्यां मधः शय्यांगुरोः॰
हितम् ॥ ॥

मधु को देता है ९७ जिसका यज्ञोपवीत हुआ ।
हो वह समावर्तन अर्थात् वेद पढ़ने की समा
प्ति तक अग्नि में ईंधन लगावें भिक्षा मांगें भूमि
में सोवे गुरु का हित करै ९८ ॥

म॰
स्स॰टी॰
भा॰
पत्र

आचार्यका पुत्र सेवाकरनेवाला धर्म करने वाला
ज्ञान देनेवाला पवित्रतासे रहनेवाला बांधव ग्र॰
हण धारण समर्थसाधु ज्ञातिवाला द्रव्यदेनेवाला
ये दश धर्म पूर्वक पढाने के योग्य हैं १.९ विना

53

आसमावर्तनात्कुर्या त्कृतोप
नयनेद्विजः ५ आचार्य्यपुत्रः
शुश्रूषु र्ज्ञानदो धार्मिकः शु॰
चिः आप्तः शक्तोर्थदः साधुः
स्वोध्याप्याद शधर्मतः ६ नाष्ट
ष्टः कस्यचि द्ब्रूया न्नचा न्यायेन
पृच्छतः जानन्नपिहि मेधा
वी जडव ल्लोक आचरेत १०

पूछे कोईवात किसीको न कहना अन्याय से पू
छे तो भीन कहना जाने हुएभी बुद्धिमान लो॰
कमें जडकी नाई रहे १० ॥

जो अधर्म से कहता है और जो अधर्म से पूछ-
ता है दोनों में से एक मर जाता है अथवा शत्रु-
ता को पाता है ॥१११॥ जिस स्थान में धर्म अर्थ औ
र सेवा जैसा कहा है शास्त्र में वैसा नहीं तिस

अधर्मेण च यः प्राह यश्चा
धर्मेण पृच्छति तयोरन्य
तरः प्रैति विद्वेषं वाधि
गच्छति ॥१११॥ धर्मार्थौ य-
त्र न स्यातां शुश्रूषा वा-
पि तद्विधा तत्र विद्या न-
वप्तव्या शुभं बीजमिवो-
षरे ॥११२॥ विद्ययैव समं का
मं मर्तव्यं ब्रह्मवादिना ।

स्थान में विद्या को न बोना जैसे सुन्दर बीज ऊ
पर भूमि में नहीं बोया जाता है ॥११२॥ विद्या के
सहित वेद पढने वाला इच्छा पूर्वक मरि जावे
परन्तु कैसी भी विपति में उस विद्या को ऊसर

भूमिमें नबोवे १३ विद्या ब्राह्मणके पास आकर कहतीहै कि मैं तुम्हारी निधिहै मेरी रक्षाकरो निंदकको मुझे नदो तो मैं बहुतवीर्य सहितरहूंगी १४ जिसको पवित्र और ब्रह्मचारी निधिका

54

आपद्यपिहि घोरायां नत्वेनामिरिणेवपेत् १३ विद्या ब्राह्मणमेत्याह शेवधिस्तेस्मि रक्षमां असूयकाय मां मादा स्तथास्यांवीर्यवत्तमा १४ यमेवतु शुचिं विद्या नियतं ब्रह्मचारिणे तस्मैमां देहि विप्राय निधिपाया प्रमादिने १५ ॥

रक्षा करने वाला सावधानतें रहनेवालाजानो उस ब्राह्मण को मुझे दो १५ ॥

गुरु की आज्ञा विना पढते पढाते सुनके जो
वेद को जानता है सो वेद का चोर है और नर
क मे जाता है ११६ लौकिक ज्ञान अथवा वैदि
क ज्ञान वा ब्रह्मज्ञान इन सब को जिस से पावे

ब्रह्मयस्तुनगुज्ञान मधी॰
यानाद्वाथपात स ब्रह्म
लेय मेगुको नरके प्रति
पद्यते ११६ लौकिक वै॰
दिकमाथि तथाध्यात्मिक
मेवच आददीत यतो ज्ञा
न त्वमपूर्व मभिवादयेत
११७ सावित्री मात्रसारो॰
पि वरंविप्रः सुयंत्रितः ।

इसके पहिले प्रणाम करे ११७ केवल गायत्री
को जानता हो परंतु शास्त्रोक्त नियम से सहि
त हो सो मान के योग्य है और तीनों वेद को
पढे हो सब वस्तुका वेचनेवाला हो शास्त्र॰

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
५५

55

क्र नियमसे रहितहों निषिद्धवस्तुका भोजन करनेवालाहो सो मानके योग्य नहींहोवे १८ बडे लोग जिस आसन पर वा जिस शय्यापर बैठेहों उसपर नबैठे और आप शय्या अथवा

नायंत्रितस्त्रिवेदोपि सर्वा॰
शी सर्वविक्रयी १८ शय्या
सनेऽध्याचरिते श्रेयसा न स
माविशेत् शय्यासनस्थश्चै
वैनं प्रत्युत्थायाभिवादये॰
त् १९ ऊर्ध्वं प्राणा ह्युत्क्राम
ति यूनः स्थविर आयति प्र॰
त्युत्थानाभिवादाभ्यां पुन
स्तान्प्रतिपद्यते २० ॥

आसनपर बैठाहो तो उठके बडे लोगोंको प्रणाम करैं १९ बडे लोगोंके आनेसे छोटे लोगोंका प्राण ऊपरजानेकी इच्छा करताहै और छोटे लोग जबउठके प्रणामकरतेहैं तबउसप्रणामको

जो मनुष्य बड़े लोगों को नित्य ही प्रणाम कर
ता है और सेवा करता है उसकी विद्या आयुष
यश बल ये चारों बढ़ते है ।११ बड़े लोगों को
प्रणाम के उपरान्त में फलाना हूं ऐसा अपना

अभिवादनशीलस्यनित्यंवृ
द्धोपसेविनः चत्वारितस्यव
र्द्धंते आयुर्विद्यायशोबलं ११
अभिवादात्परंविप्रोज्यायांस
मभिवादयन् असौ नामाह
मस्मीति स्वनाम परिकीर्त
येत् १२ नामधेयस्य येके
चि दभिवादान्नजानते ।।

नामकहे १२ जो मनुष्य प्रणामकरणेकीवाक्य
कोनहीजानते सोकेवल अपने नामहीकोकहैं
और स्त्रीभी इसीप्रकारमें कहैं १३ ।।

म०
स्र०टी०
भा०
५६

प्रणामकरत अपने नामके अंतमे भोः ऐसा कहे भो शब्द जोहै सो नामका स्वरूपहै यह ऋषियोंने कहा २४ आशीर्वाद देनेमें आयु-ष्मान्भव सौम्य ऐसा कहना चाहिये नामके

56

नान्यान्नोऽहमिति ब्रुयात्स्त्रि-
य सर्वास्तथैवच २३ भोःश
ब्दं कीर्तयेदंते स्वस्य नाम्नो
भिवादने नाम्नां स्वरूपभा-
वोहि भो भावऋषिभिः स्मृ
तः २४ आयुष्मान् भव सौ
म्येति वाच्यो विप्रोभिवादने
अकारश्चास्य नाम्नोंते वाच्यः
पूर्वाक्षरः प्लुतः २५ ॥

अंतमें अकारादि स्वरको प्लुत अर्थात त्रिमा-त्रात्मक कहना २५ ॥

जो मनुष्य आशीर्वाद देनेकी वाक्यकोनहीजा॰
नताहै उसको प्रणामनहीं करना जैसा शूद्र जैसा
वहहै ३९ ब्राह्मण से कुशल क्षत्रिय से अनामय
वैश्यसे क्षेम शूद्रसे आरोग्य पूछना चाहिए ४०

योनवेत्त्यभिवादस्यविप्रः
प्रत्यभिवादनम् नाभिवाद्यः
सविदुषा यथाशूद्रस्तथैव
सः ३९ ब्राह्मणं कुशलं पृ
च्छेत्क्षत्रबंधुमनामयं वैश्यं
क्षेमंसमागम्य शूद्रमारोग्य
मेवच ४० अवाच्योदीक्षि॰
तोनाम्नायवीयानपियोभ॰
वेत्

जो मनुष्य अपनेसे छोटाहै और यज्ञकरताहै
उस को यज्ञमें भो भवत ऐसे शब्दसे बोलना
उसका नाम न लेना ४१ ॥

म॰
स्त॰टी॰
भा॰
५२

जो स्त्री अपनेकोईसंबंधमे नहीहै उसको भवती सुभगे भगिनी ऐसा कहना ॥५१॥ मामा चाचा श्वसुर ऋत्विज अर्थात् यज्ञ करनेवाला गुरुवे सब अपने वयसे छोटेभीहु तो उसको मैं फलानाहं

57

भोभवत्पूर्वकं त्वेन मभिभा षेत धर्मवित् ॥५॥ परपत्नी तुया स्त्री स्या दसंबंधा च योनितः तां ब्रूयाद्भवती त्येवं सुभगे भगिनीति च ॥५१॥ मातुलांश्च पितृव्यांश्च श्वशुरा नृत्विजो गुरून् । असावहमिति ब्रूया त्प्र॰ त्युत्थाय यवीयसः ॥३॰॥

ऐसा कहकर उठके प्रणाम करे ॥३॰॥
श्रीरामचंद्रायनमः ॥ ॥३॰॥

मौसी मामी सासु फूफू येसब गुरुकी स्त्रीकी
नांई इन सबका पूजा करना उचितहै ३१ जेठे
भाईकी जो सवर्णास्त्रीहै अर्थात् हमरे वर्णकी
नहींहै उसका पादछूके नित्यही प्रणाम करं

मातृष्वसा मातुलानी श्वश्रू
रथ पितृष्वसा सम्पूज्या गु
रुपत्नीव त्समस्ता गुरुभा
र्यया ३१ भ्रातु भार्योपसं
ग्राह्या सवर्णाहन्यहन्यपि
विप्रोष्य तूपसंग्राह्या ज्ञाति
संबंधियोषितः ३२ पितु
र्भगिन्यां मातुश्च ज्यायस्यां
च स्व सर्य्यपि ॥

:

उसकापाद
ना और जाति संबंधकी जो स्त्रीहै
छूके प्रणाम करना विदेशसे आके अपने देश
मे रहे तब पादको न छूवे प्रणाम मात्रकरे ३२
फूफू मौसी जेठी भगिनी इन सबका माताके

समान जानना मानातौं इनसबोंमे बडीहै ३२
एकग्रामका एकपुरके रहनेवाले गुणसे रहि
तहो और दसबरससेजेठाहो तो उसके साथ ।
मित्रताका व्यवहारहोताहै और गुणीहो पां
च बरससेजेठाहो तोभी मित्रताहीका व्यवहार
होताहै औरवेद पढेहों तीन बरससेजेठाहो तो

मात्स्वहृति मातिष्टे न्मा
ता नाभेषा गरीयसी ३३
दशाब्दाख्यं पौरसख्यं पंचा
ब्दाख्यं कलाभृतां त्र्यब्द पू
र्वं श्रोत्रियाणां स्वल्पेना-
पि स्वयोनिषु ३४ ब्राह्मणं
दशवर्षं तु शतवर्षं तु भूमि
पं पिता पुत्रौ विजानीया
द्ब्राह्मणस्तु तयोः पिता ३५

मित्रताही होतीहैं और संबंधमेहो तो थोडी
ही कालमें मित्रता होतीहै सर्वत्र जो काल
कर प्राप्तहै उसके उपर ज्येष्ठताकाव्यवहार
होताहै ३४ दसबरसका ब्राह्मण और सौ बर
सका क्षत्रिय दोनो आपुसमे पितापुत्रकीनाई
हैं तिसमें ब्राह्मणपिताहै और क्षत्रियपुत्रहै

इत्यबेधु वयकर्म विद्या येपांचमान्यकेस्थानेहै इस में पूर्वपूर्वसे उत्तरउत्तरबड़ाहै ३६ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके इनपांचोंके मध्यमें जिसमें जितना अधिक वस्तुरहै सोमान्यके योग्यहै नब्बे ९० बरसके उपर

वित्तं बंधु वयः कर्म्म विद्या भवति पंचमी एतानि मान्य स्थानानि गरीयो यद्यडत्तरम् ३६ पंचानां त्रिषु वर्णेषु भूयांसि गुणवंतिच यत्रस्युः सोत्रमानार्हः शूद्रोपिदशमीङ्गतः ३७ चक्रिणो दशमीस्थस्य रोगिणो भारिणः स्त्रियाः ॥

वयहो तो शूद्रभी मानके योग्यहै ३७ जो रथपरचढाहै और जो नब्बेबरसके उपर का वयवालाहै रोगीहै बोझ लियेहै स्त्रीहै ब्रह्मचारीहै राजाहै विवाह करनेके लिए जो वरहै इन सबको राह

म·
स्म·टी·
भा
५९

59

छोड़ देना अर्थात् इन सबोंमे कोई एक ओरसे
आताहो और उसकी समीप दूसरी ओरसे कोई
आताहो तो वहराह छोडदेवे इन सबोंका जाने
के लिये ३५ और यह सब आपसमें ब्रह्मचारीको

स्नातकस्य च राज्ञश्च पंथादे
यो वरस्य च ३५ तेषां तु सम
वेतानां मान्यौ स्नातक पा·
र्थिवौ राजस्नातकयोश्चैव
स्नातको नृपमान भाक् ३
६ उपनीय तु यः शिष्यं वेद
मध्यापये द्विजः सकल्पं स
रहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्ष
ते ४· ॥

और राजाको राहदेवे और राजा वी ब्रह्मचारीमें
राजा राह देवे ३६ यज्ञोपवीत करके कल्प और
रहस्य अर्थात् गोप्य वस्तु सहित वेदका पढावे
वह आचार्य कहाताहै ४· ॥ ॥

वेदका एकदेश और वेदके छे अंग अर्थात् शि
क्षा कल्प व्याकरण निरुक्त ज्योतिष छंद इन स
बको जीविकाकेलिए जोपढाताहै सोउपाध्याय
कहाताहै ४१ गर्भाधान आदि कर्मको विधिसहि

एकदेशन्तु वेदस्य वेदांगान्य
पिवा पुनः यो ध्यापयति वृ
त्यर्थे मुपाध्यायः सउच्यते ४१
निषेकादीनिकर्माणियः क
रोति यथाविधि संभावयति
चान्नेन सो विप्रो गुरुरुच्यते
४२ अग्न्याधेयं पाकयज्ञा
नग्निष्टोमादिकान्मखान् ॥

त जो करताहै और अन्नमें बढाताहै सोब्राह्मण
गुरु कहाताहै ४२ वरणलेके अग्निहोत्रकर्म अष्टका
श्राद्ध आदि अग्निष्टोम आदियज्ञ इनसबको करता
है सो ऋत्विक् कहाताहै जोदोनों कानकोवेदमे

म० स्मृ० टी० भा० ६०

संपूर्ण करताहै सो माताहै और पिताहै इसमे द्रोह कभी न करना ४४ उपाध्यायसे दसगुण आचार्य्य बडाहै आचार्य्यसे सौगुणपिताबडाहै

यः करोति कृतो यस्य स त
स्यर्त्विगिहोच्यते ४३ य आ
वृणोत्य वितथं ब्रह्मणा श्र
वणा वुभौ समाता सपिता
ज्ञेय स्तन्न द्रुह्येत्कदाचन ४४
उपाध्याया न्दशाचार्य्य आचा
र्याणां शतं पिता सहस्रं तु
पितॄन्माता गौरवेणाति रि
च्यते ४५ ॥

पितासे हजारगुण माता बडीहै ४५ ॥

जन्म देनेवाला और वेद पढानेवाला इनदोनों
मे वेद पढानेवाला बडाहै वेद पढनेसे जो ज॰
न्महोताहै सो नित्य नाश रहितहै ४५ माता पि
ता अपने कामके बस होकर पुत्रको उत्पन्न ॰

उत्पादक ब्रम्हदात्रो र्गरीयान्
न्ब्रम्हदः पिता ब्रम्ह जन्महि
विप्रस्य प्रेत्यचेह च शाश्वतं॰
म् ४६ कामा न्माता पिता
चैनं यदुत्पादयतो मिथः
संभूतिं तस्य तां विद्या द्यो
ना वभिजायते ४७ आचा॰
र्य स्त्वस्य यां जातिं विधि
व द्वेद पारगः ॥

करते है इस लिए उत्पत्ति की योनिहै ४७ ॥
तो जन्म गायत्री करके आचार्य करता है सो
जन्म सत्य है अजरहै अमर है ४८ ॥

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
६१

थोड़ा वा बहुत वेदके पढ़ानेसे जो उपकार करता है उसको भी गुरु जानना ॥ अपने वयसे छोटाहै और वेदको पढ़ाताहै धर्मको सिखला॰

उत्पादयति सावित्र्या साम
न्या सा जरामरा ॥ अल्पं
वा बहुवा यस्य श्रुतस्योप
करोतियः तमपीह गुरुं वि
द्या छ्रुतोपक्रियया तया ॥
ब्राह्मस्य जन्मनः कर्ता
स्वधर्मस्य च शासिता बालो
पि हद्धो विप्रस्य पिता भ॰
वति धर्मतः ॥ ॥

ताहै वह भी गुरु कहाता है ॥ ॥

अंगिराके लड़काने अपने चाचोंका पढाया औ
र बैठा ऐसा कहा क्यों कि ज्ञानसे वड़ा रहा इस
लिए ॥ वेचाचा लोग क्रोधपाके देवतोंसे पूछा

अध्यापयामास पितॄन् शिशुरां
गिरसः कविः पुत्रका इतिहो
वाच ज्ञानेन परिगृह्य तान् ।
॥ ते तमर्थ मपृच्छन्त देवा
नागतमन्यवः देवाश्चैतान्
समेत्योचु र्न्याय्यम्वा शिशुर
कवान् ॥ अज्ञो भवति
वै बाल पिता भवति मं
त्रदः ॥

सब देवति उने मिलके कहा कि तुम्हारि लड़
केने अच्छा कहा ॥ क्यों कि जो अज्ञानही
जानता वह बालक कहाता है और जो मं

र देताहै सो पिता कहाता है ५३ बरस और केशका पाकना द्रव्य बंधु इनों सबों करके बडा नहीं होता किंतु ऋषि लोगोंने यही धर्म कहा है कि हमारे

अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मंत्रदम् ५३ न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बंधुभिः ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान् ५४ विप्राणां ज्ञानतो ज्यैष्ठ्यं क्षत्रियाणां तु वीर्यतः वैश्यानां धान्यधनतः शूद्राणामेव जन्मतः ५५ ॥

सबमें अंग सहित वेदका पढनेवाला जो है सोई बडा है ५४ ब्राह्मणोंमे ज्ञानसे बडाई है क्षत्रियोंमे बलसे वैश्योंमे धनधान्यसे शूद्रोंमे जन्मसे बडाई है ५५

केशोंके पकनेसे वृद्ध नहीं कहाता युवाहै और पढ़ाहै इसी को देवतोंने वृद्ध कहाहै ५१ काष्ठकी हाथी और चामका मृग मूर्ख ब्राह्मण इन तीनों केवल नामही को धारण करतेहैं

नतेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः यो वै युवाप्यधीयान स्तं देवा स्थविरं विदुः ५१ यथाकाष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः यश्च विप्रो नधीयान स्त्रयस्ते नाम बिभ्रति ५२ यथा षंढो फलः स्त्रीषु यथा गो गविचाफला ॥

काम उत्पन्न नहीं करसकते ५२ जिस प्रकार से नपुंसक मनुष्य स्त्रियोंमें निष्फल है और गो गोमें निष्फलहै जिस प्रकार मूर्ख ब्राह्मण

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
६३

63

को दान देना निष्फलहै तिस प्रकार सें वे पढा
ब्राह्मण निष्फलहै ५५ जिसमें सब जीवोंको पीडा
नहो ऐसा कल्याण करन हारजो कर्म इसकर्म
की आज्ञा देना चाहिए और मधुर चिक्कण वाणी

यथा चाज्ञे फले दाने तथा
विप्रो न्टचो फलः ५५ अहिं
सयैव भूतानां कार्यं श्रेयो
नुशासने वाक्चैव मधुरा
श्लक्ष्णा प्रयोज्या धर्म मि॰
च्छता ५६ यस्य वाङ्मनसी
शुद्धे सम्यग्गुप्ते च सर्वदा
सवै सर्व मवाप्नोति वेदां॰
तोपगतं फलम् ६० ॥

बोलना चाहिए धर्मकी इच्छा करन वालेको ५६
जिसकी वाणी और मन शुद्धहै सर्व कालमें रक्षि॰
तहै सो वेदांतकी फलको पाताहै ६० ॥

दुःखितहो तौभी ऐसीबातनबोले कि जिससे ।
किसीको मर्म घाव पराएके द्रोह कर्ममें बुद्धिको
न रखें जिस बातमें किसीका जीव उद्वेगको प्राप्त
हो ऐसी बात न बोले ११ सम्मानते ब्राह्मण डरता

नारुन्तुदः स्यादार्तोपि नप-
र द्रोह कर्मधीः ययास्योद्वि
जते वाचा नालोक्यां ता मु-
दीरयेत् ११ सम्माना ब्राह्म
णो नित्य मुद्विजेत विषादि
व अमृतस्येव चाकांक्षे दव
मानस्य सर्वदा १२ सुखं ह्यव
मतः शेते सुखं च प्रतिबुध्य
ते ॥

रहे विषकी नाईं और अपमानकी इच्छा करे अमृत
की नाईं १२ अपमान पाके सुख पूर्वक सोताहै
और सुख पूर्वक जागताहै इस लोकमें सुमताहै

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
१४

64

और अपमान करणे वाला नाशको पाताहै १३
इस प्रकारसे संसार को पाके धीरे धीरे गुरु कुल
में वास करता हुआ ब्रह्म को प्राप्ति करने वाली

स्त्वेचरति लोकेस्मिन्नव॰
मे नाविनश्यति १३ अनेन
क्रमयोगेन संस्कृतात्मा द्वि॰
जः शनैः गुरौ वसन्संचिनु॰
या द्ब्रह्माधि गमिकं तपः १
४ तपो विशेषै र्विविधै र्व्रत
श्च विधिचोदितैः वेदः कृत्स्नो
धि गंतव्यः सरहस्यो द्विजन्म
ना १५

तपको करे १४ नाना प्रकार के तप और व्रतको
करके रहस्य अर्थात गोप्य वस्तु सहित वेदको
पडे १५ ॥

॥

ब्राह्मणतपकरताहुवा वेदहीको पढें यही उ
सका परम तपहै ॥ पांवसे लेके नख तक प
रमतपवह करताहै जो माला पहिरे हुए भी
बुद्धिमान शक्तिपूर्वक दिन दिन एवं वेदको

वेदमेव सदाभ्यासे तपस्त
प्स्यन् द्विजोत्तमः वेदाभ्या
सो हि विप्रस्य तपः परमि
होच्यते ॥ आहैवस नखा
ग्रेभ्यः परमं तप्यते तपः
यः स्रग्व्यपि द्विजोधीते
स्वाध्यायं शक्तितोन्वहं ॥
योनधीत्य द्विजो वेद मन्य
त्र कुरुते श्रमम् ॥

पढताहै ब्रह्मचारीको माला पहिरना निषिद्ध
है इसलिए निषिद्धकरम करके भी वेदको पढे
तोभी वह तपहीहै ॥ जो ब्राह्मण वेदका पढ
ना छोड़के शास्त्रोंके पढनेमें परिश्रम करताहै

म॰
स्म॰ टी॰
भा॰
१५

65

सो जीता हुआ अपने वंशोंमें सहित शूद्रके भावको प्राप्त होताहै ६८ वेदमें यह बातहै कि ब्राह्मण का जन्मतीनहै प्रथम मातासे दूसरा

सजीव ह्येव शूद्रत्व माशु गच्छति सान्वयः ६८ मा॰ तु रग्रेऽधि जननं द्वितीयं मौंजि बंधने तृतीयं यज्ञ दीक्षायां द्विजस्य श्रुतिचो दनात् ६९ तत्र यद्ब्रह्म जन्मास्य मौंजी बंधन चिह्नि तम् तत्रास्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य्य उच्यते ७०

यज्ञोपवीत होनेसे तीसरा यज्ञकरनेसे ६९ तिसमें जो यज्ञोपवीत होनेसे जन्महै गायत्री माताहै आचार्य्य पिताहै ७० ॥ ॥

वेदके देनेसे आचार्य्य पिता कहाताहै जब तक
यज्ञोपवीत नही होता तब तक इस लडकेका
अधिकार कोई काममें नही होता ११ यज्ञोपवी
तके भए बिना लडके का अधिकार श्राद्धकरने

वेदप्रदाना दाचार्य्यं पित
रं परिचक्षते नह्यस्मि न्युज्य
ते कर्म्म किंचिदा मौंजिबं
धनात् ११ नाभिव्याहारये
द्ब्रह्म स्वधानि नयनाहृते
शूद्रेणहि समस्तावद्याव
द्वेदेन जायते १२ कृतोप॰
नयनस्यास्य व्रतादेशनमि
ष्यते ॥

में होताहै और जब तक शूद्रके समान होताहै
१२ यज्ञोपवीत के उपरांत ब्रत करना चाहिये
और विधि पूर्वक वेद ग्रहण करना चाहिए १३

66

जिसका जो चर्मजो सूत्र जो मेखला जो दण्ड जो वस्त्र है सोई व्रतमें भी रहै १४ ब्रह्मचारी गुरुकु॰लमें वास करताहुआ इन्द्रियों को वास करके

ब्रह्मणो ग्रहणं चैव क्रमेण विधिपूर्वकम् ॥ १३ ॥ यद्यस्य विहितं चर्म यत्सूत्रं याच मेखला यो दण्डो यच्च वस्त्रं तत्तदस्य व्रतेष्वपि १४ सेवेतेमांस्तु नियमा न्ब्रह्मचारी गुरौ वसन् सन्नियम्येन्द्रियग्रामं तपो वृद्ध्यर्थ मात्मनः १५ ॥

अपने तपके बढनेके लिए आगे जो कहेंगे नि॰यम उसको सेवन करे १५ ॥

नित्यही स्नान करके पवित्र होकर देव ऋषि पि
तरोंका तर्पण करे देवतोंका पूजन करे अग्निमें
लकड़ी डाले १६ मधु मांस गंध माला रसस्त्री औ
र शुक्त अर्थात् जो स्वभाव से मधुर है कालपाके

नित्यं स्नात्वा शुचिः कुर्याद्
देवर्षि पितृतर्पणम् देवता
भ्यर्चनं चैव समिदाधानमे
व च १६ वर्जयेन्मधु मांसं
च गंधं माल्यं रसास्त्रियः
शुक्तानि यानि सर्वाणि प्रा
णिनां चैव हिंसनं १७ अ
भ्यंग मंजनं चाक्ष्णो रुपान
च्छत्रधारणम् ॥

जल बास करके खामिल होजावे प्राणियों का
मारना १७ उबटन का जल जूता छाता काम
क्रोध लोभ नाच गीत बाजा १८ ॥

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
१७

67

नृत्य झगड़ा पराएका झूठा दोष कहना स्त्रियों को देखना और मिलना पराएका नाश इन सब को बरावे ७९ अकेला सोवे वीर्यको न गिरानाहै

कामं क्रोधं च लोभं नर्तं
नं गीतवादनम् ७८ द्यूतं
च जनवादं च परिवादं
तथानृतम् स्त्रीणां च प्रे
क्षणालम्भ मुपघातं परस्य
च ७९ एकः शयीत सर्वत्र
न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित्
कामाद्धि स्कन्दयन् रेतो हि
नस्ति व्रत मात्मनः ८० ॥

और जो इच्छासे वीर्यको गिरानाहै सो अपने ब्र
तको नाश करानाहै ८० ॥

स्वप्नमें विना इच्छासे वीर्य गिराहो तो नहाके सू-
र्यकी पूजा करके पुनर्मां इस मन्त्रको तीनवेर ज
पकरे ॥ जलका घड़ा पुष्प गोबर मोटी ऊषण

स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्वि
जः शुक्रमकामतः स्नात्वा
र्कं मर्चयित्वात्रिः पुनर्मामि
त्यृचं जपेत् ॥ उदकुम्भं सु
मनसो गोशकृन्मृत्तिकां
ऊषणान् आहरे यावदर्थानि
भैक्षं चाहरहश्चरेत् ॥ वे-
द यज्ञ हीनानां प्रशस्ता-
नां स्वकर्मसु ॥

इन सबको अपने कार्यके अनुसार ल्यावे और
भिक्षाको नित्यही मांगे ॥ जो मनुष्य वेद औ-
र यज्ञ और अपने अच्छे कर्मोंसे सहित हो उसी

के सहित गृहसे भिक्षालावे ८४ गुरुके कुल॰
में जातिके कुलमें बंधुके कुलमें भिक्षा नमांगे
दूसरे गृहमें न मिलसके तो पहिले पहिलेको

ब्रह्मचर्य्याहरेद्भैक्षं गृहेभ्यः
प्रयतो ऽन्वहम् ८४ गुरोः
कुले न भिक्षेत न ज्ञाति
कुलबंधुषु अलाभे त्वन्यगे
हानां पूर्वं पूर्वं विवर्जयेत्
न् ८४ सर्वं वापि चरेद्ग्रामं
पूर्वोक्तानाम संभवे नियं॰
म्य प्रयतो वाचं मभिशस्तां
स्तु वर्जयेत् ८५ ॥

छोडदेवे ८४ जो सब कहि आपहै इन सबोंका अ॰
भाव हो तो सब गांवमें भिक्षा मांगे मौनहोके इं॰
द्रियकोंवसकरके पंरतु पापियोंका गृहछोडदेवे ८५

दूरसे लकड़ी लाकर आकाश –राखे उसी लक
डीसे सायंकालमें और प्रातःकालमें होम करे अ
लस्य को छोड़देवें ८६ सामर्थ्य रहत संते सातदि
न तक भिक्षा नमांगे और अग्निमें होम नकरे

दूराहाहृत्य समिधः सन्निद
ध्याद्विहायसि सायं प्रातश्च
जुहुयात्ताभिरग्निमतंद्रि
तः ८६ अकृत्वा भैक्ष्य चरण
मसमिध्यच पावकम् अना
तुरः सप्तरात्र मवकीर्णि ब्र
तं चरेत् ८७ भैक्ष्येण वर्तये
न्नित्यं नैकान्नादी भवे द्व्रती

तो अवकीर्णिका व्रत जो आगे कहेंगे उस व्रतको
करे ८७ भिक्षा मांग के नित्य ही भोजन करे परंत
एकही के अन्नभोजन करे भिक्षा मांगके भोजन
करना उपवासके समझें ८८ विश्वेदेव कर्मके नि

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
९५

मित्त अथवा पितृकर्मके निमित्त निमंत्रित हो तो
श्राद्धमें इच्छा पूर्वक भोजन करे परंतु दोनोकर्म
में क्रमसे व्रतीकीनांई और ऋषियोंकी नांई रहे
अर्थात् व्रतमें जैसे मधु मांस आदिक का भोजन
निषिद्धहै तैसेही रहे और ऋषि कहिए यती ति

भैक्ष्येण व्रतिनो हृति रुप॰
वास समा स्मृता ८८ व्रत
वद्देव दैवत्ये पित्र्यकर्म्मण्य
थर्षिवत् काममभिर्थितो
श्नीया द्व्रतमस्य न लुप्यते
८९ ब्राह्मणस्यैव कर्मैत
दुपदिष्टं मनीषिभिः राज
न्य वैश्ययो स्त्वेवं नैतत्क
र्म्म विधीयते ९० ॥

सकी नांई मधु मांस आदि का वर्जन करे यह क
रनेसे उसके व्रतका लोप नहीं होता ८९ श्राद्ध॰
में भोजन करना यह ब्राह्मणहीका कामहै और
क्षत्रिय वैश्य ब्रह्मचारियोंका नहींहै ९० ॥

गुरुकी आज्ञा हो चाहे नहो परंतु वेदके पढने
में और गुरुके हित कर्मसे यत्नकरे ४१ गुरुके मु
खको देखनाइच्छा शरीर वाणी बुद्धि इंद्रिय मन
इन सबको वश करके हाथ जोडके खडारहै ४२

चोदितो गुरुणा नित्य मप्र
चोदित एववा कुर्यादध्यय
ने यत्न माचार्य्यस्य हितेषु
च ॥४१॥ शरीरं चैव वाचं च
बुद्धीन्द्रिय मनांसि च नियं
म्य प्रांजलि स्तिष्ठे द्वीक्षमा
णो गुरो र्मुखम् ॥४२॥ नित्य मु
द्धृत पाणिः स्यात्साध्वाचारः
सुसंयतः ॥

ओढनेका जो वस्त्र है उसके बाहर दक्षिणहस्त
को नित्यही किए रहै साधुकीनांई आचार सहित
रहै चंचलताको छोडे रहै बैठो ऐसी आज्ञा गुरु

कीहो तब उनके सन्मुख बैठें ४३ गुरुकी समीप
सर्वकालमें हीन अन्न और हीन वस्त्रसे और हीन
स्वरूपसे रहे अर्थात् जैसा अन्न गुरु भोजन करै उ
ससे निकृष्ट अन्न भोजन करै और जैसा वस्त्र गुरु
पहिरें उससे निकृष्ट वस्त्र पहिरे और जैसा स्वरूप

आसनो मितिचोक्तः स्तत्रा
सीतताभिमुखे गुरोः ४३
हीनान्नवस्त्रवेषः स्यात् सर्व
दा गुरुसन्निधौ उत्तिष्ठेत्प्र
थमे चास्य चरमे चैव संवि
शेत् ४४ प्रतिश्रवणसंभा
षे शयानो न समाचरेत् ।
नासीनो नच भुञ्जानो न ति
ष्ठन्न पराङ्मुखः ४५ ॥

गुरु बनाई रहे उससे निकृष्ट स्वरूप अपना बना
ई रहे गुरुके जागनेके पहिले जागे और गुरुके
सोनेके पीछे सोवै ४४ सोता आसन पर बैठा भोज
न करता और विमुख अर्थात् मुखफेरे हुआ गुरुसेन
बोले और गुरुके बात सुनैं किंतु ४५ ॥

गुरु बैठेहो तों आप ठाढ़ेहोकर बोले और बात॰
को सुने गुरु खड़ाहो तो आप टोलताहुआ बातों
को कहै और गुरु डोलते हो तों उनके सन्मुखहो
कर बोले और बातको सुने जो गुरुदौड़तेहों तो
आप भी पीछे दौड़करबोले और बातको सुने

आसीनस्य स्थितः कुर्या द
भिगच्छंस्तु तिष्ठतः प्रत्युद्ग
म्य त्वा व्रजतः पश्चाद्धावंस्तु
धावतः ९६ पराङ्मुखस्याभि
मुखो दूरस्थस्यैति चान्तिकं
प्रणम्य तु शयानस्य निदेशे
चैव तिष्ठतः ९७ नीचं श॰
य्यासनं चास्य सर्वदा गुरुस
न्निधौ ॥

९६ गुरु विमुख हो तो उनके सन्मुख जा कर और
दूरहो तो समीप जा कर सोए हो तो प्रणामकर॰
आज्ञाको सुने ९७ गुरुके समीपमें शय्या आसन
अपना नीच राखे गुरुके देखते हुए जैसा चाहै॰

मं॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
७१

जैसा आसन करके न बैठे ९८ गुरुके पीछेभी के
वल इनके नामको नलेवे और गुरुके गमन भा॰
षण चेष्टाकी नांई आप यह तीनों कर्मको नकरै

गुरोस्तु चक्षु विषये न यथे
ष्टासनो भवेत् ९८ नोदाह
रेदस्य नाम परोक्षमपि के
वलं नचैवास्यानुकुर्वीत
गति भाषित चेष्टितम् ९९
गुरो यत्र परीवादो निंदावा
पि प्रवर्तते कर्णौ तत्र पि॰
धातव्यौ गंतव्यं वा ततोन्य॰
तः २००

९९ जहां गुरुका सच्चा वा झूठा दोष कहाजाताहो
वा निंदाहोतीहो तहां कान मूंदना अथवा वहांसे
उठिजाना २०० ॥

गुरुका सच्चा वा झूठा दोष कहने से गदहा होता
है और निंदाकरणेसे कुत्ता होताहै अनुचित गुरु-
का धन भोजन करनेसे छोटा कीड़ा होताहै और
गुरुकी बड़ाई को नहि सहि सकता सो बड़ा कीड़ा
होताहै २०१ गुरुके पूजा दूरसे अर्थात् किसीसे पू

परीवादात्खरोभवति श्वावै
भवति निंदकः परिभोक्ता
कृमि र्भवति कीटो भवति
मत्सरी २०१ दूरस्थो नार्चये
देनं नक्रुद्धो नांतिके स्त्रियाः
यानासनस्थश्चैवैनमवरु
ह्याभिवादयेत् २०२ प्रतिवा
तेनु वातेव नासीत गुरुणा
सह ॥

जाकी समग्री भेजके न करना और क्रुद्धहोके न
करना अपनी स्त्रीके समीप होतेभी न करना आ
पसवारी पर हो वा आसनपर बैठाहो तो सवारीसे
उतरके और आसनको छोड़के प्रणामकरै २०२ जो
मनुष्य गुरुके देशसे शिष्यके देशमें आयाहै और जो

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
७२

72

शिष्यके देशसे गुरुके देशमें गयाहै इनदोनों मनु
ष्योंके समीपमें गुरुके साथ शिष्य नरहै जो बात
गुरुके सुननेमें नआवे ऐसी कोई बात गुरुकी बा
और न करै अर्थात् गुरुसे शिष्यछिपाकर कोईबा
त न करै २०३ बैल घोडा ऊंट इन करके युक्त जो

असंश्रवे चैव गुरोर्नकिंचि॰
दपिकीर्तयेत् २०३ गोश्वोष्ट्र
यानप्रासाद स्रस्तरेषु कटे
षुच आसीत गुरुणा सार्द्धं
शिलाफलकनौषु च २०४
गुरोर्गुरौ सन्निहिते गुरुवद्वृ
त्ति माचरेत् नचानि सृष्टो
गुरुणा स्वान् गुरूनभिवाद
येत् २०५

यान अर्थात् रथ गाडी तिस पर और अटारी चटाई
पाथर काट नाव इन सबोंपर गुरुके साथ बैठे २०४
गुरुके गुरुमें भी गुरुनाई आचरण करै और गुरुकी
आज्ञा विना आपनें देशमें आप हुए चाचा आदिको
प्रणाम नाकरै २०५ ॥

इसी प्रकारसे आचार्यको छोड़कर उपाध्याय आ
दि दश गुरुहैं और संबंधी जो चाचा आदिहैं और
जो अधर्मसे बचातेहैं और जो हितवानका उप
देशकरतेहैं इन सबोंमे नित्यही गुरुकी नाई सब

विद्यागुरुष्वेतदेव नित्यावृ
त्तिः स्वयोनिषु प्रतिषेधत्सु
चाधर्मान् हितं चोपदिशत्
स्वपि २०६ श्रेयस्सु गुरुवद्वृ
त्तिं नित्यमेव समाचरेत्
गुरुपुत्रेषु चार्येषु गुरोश्चै
व स्वबंधुषु २०७ बालः स
मान जन्मा वा शिष्यो वा
यज्ञ कर्मणि ॥

व्यवहार राखे २०६ जो बड़े लोगहैं और जो श्रेष्ठ गुरु
पुत्रहैं और जो गुरुके बंधुजनहैं इन सबोंमे गुरुकी
नाई आचरणकरे २०७ गुरुका पुत्र अपने वयसे छो
टाहो वा बराहो और पढ़ानेमें समर्थहो और अप

म०
स्मृ०टी०
भा०
७३

नी यज्ञ दर्शनके लिये आवे तो इसका मान गुरु की नाईं करना चाहिये २०८ स्नान कराना उबटन लगाना झूठा भोजन करना पांव धोना ये सब काम गुरु पुत्रका नकरना २०९ सवर्णा जो गु०

अध्यापयन् गुरुसुतो गुरुवन्मान मर्हति २०८ उत्सादनंच गात्राणां स्नापनोच्छिष्टभोजने नकुर्य्यात् गुरुपुत्रस्य पादयोः शौचनेजनम् २०९

रुपत्नीहै उसकी पूजा गुरुकी नाईं करना और असवर्णाजोहै उसकी पूजातो उठके प्रणाम करे इतनाहीहै २१० ॥

गुरुकी स्त्रीको तेल और उबटन नलगावे स्नान करना केश पसारना येभीनकरै ३१॥ जो शिष्य बीस वर्षका हो और गुणदोषको जानताहो वह युवती गुरुपत्नी

गुरुवत्प्रतिपूज्याः स्युः सव र्णा गुरुयोषितः असवर्णा स्तु संपूज्याः प्रत्युत्थानाभि वादनैः ३१। अभ्यञ्जनं स्नाप नं च गात्रोत्सादनमेव च गु रुपत्न्यानि कार्याणि केशा नां च प्रसादनम् ३१॥ गुरु पत्नी तु युवति नाभिवा द्येह पादयोः ॥

का पांव पकड़के प्रणाम न करै ३१२ मनुष्योंको दू षित करना यह नारियोंका स्वभावही है इस लिये पंडित लोग इस्त्रीके विषयमें सावधानतासे रहतेहैं

74

२१२ काम क्रोध सहित हो पंडित वा मूर्ख हो तो
उसको निषद्ध राहपर लेजानेका स्त्री लोग समर्थ हैं १४ माता भगिनी लड़की इन सबोंकेसाथ

पूर्णविंशति वर्षेण गुण ॰
दोषौ विजानता २१२ स्वभा
व एषनारीणां नराणां मि॰
ह दूषणम् अतोर्थान्न प्रमा
द्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः
२१३ अविद्वांस मलंलोके
विद्वांस मपिवा पुनः प्रम॰
दाह्युत्पथन्नेतुं काम क्रोध
वशानुगम् १४ मात्रा स्वस्रा
दुहित्रा वा न विविक्तासनो
भवेत् बलवानिन्द्रियग्रामो
विद्वांसमपिकर्षति १५ ॥

एकांतमे रहना इन्द्रियसब बलवानहैं पंडितों
कोभी खींचतिहैं १५ ॥

युवती गुरुपत्नीको युवा शिष्य इच्छा पूर्वक विधि
से मै फलानाहूं ऐसा कहता हुआ भूमिमें वंदना
करे ॥ सज्जनोंके धर्मको स्मरण करता हुआ शि
ष्य विदेशसे आके गुरुपत्नीका पांव पकडे औ

कामं तु गुरुपत्नीनां युव
तीनां युवाभुवि विधिवद्वं
दनं कुर्यादसावहमिति
ब्रुवन् ॥ विप्रोष्य पादग्र
हणमन्वहं चाभिवादनं
गुरुदारेषु कुर्वीत सतां
धर्ममनुस्मरन् ॥ यथा
खनन् खनित्रेण नरो वा
र्य्यधिगच्छति ॥

र प्रणाम तो प्रतिदिन करे ॥ जिस प्रकारसे
मनुष्य कुदारीसे खनते जलको पाताहै तिस प्र
कारसे सेवा करते करते गुरुकी संपूर्ण विद्या

म० स्मृ०टी० भा० ७५

75

को शिष्यपनाहै १८ मुंड मुंडाए वा जटा रखाये अथवा शिखाको जटा सदृश बनाए हो परंतु ब्रह्मचारीको ग्राममें रहते हुए सूर्य्य उदयको और अस्तको न प्राप्तहोवे किंतु ग्रामसे बाहर जब

तथा गुरुगतो विद्यो शुश्रू
षारधिगच्छति १८ मुण्डो
वा जटिलो वा स्या दथवा
स्या च्छिखा जटः नैनंग्रामे
भिनिम्लोचे त्सूर्य्योनाभ्युदि
यात्कचित १९ तंचेदभ्युदि
या त्सूर्य्यः शयानं काम
चारतः निम्लोचे द्वाप्यविज्ञा
नो जपन्नुपवसेद्दिनं २० ॥

ब्रह्मचारी जावे तब येदोनों कर्महोवे १९ कदाचित ब्रह्मचारी के ग्राममें रहते हुए येदोनों कर्महोवे तो जप करना हुआ उसदिन उपवास करे २० ॥

यह दोनों कर्म अपनी इच्छा पूर्वक छोड़त जो प्रायश्चि
त है उसको न करै तो बड़े पापसे युक्त होता है २१
आचमन करके दोनों संध्यामें एकाग्र चित होक

सूर्येण अभिनिर्मुक्तः श
यानोभ्युदितश्च यः प्रायश्चि
त्तमकुर्वाणो युक्तः स्यान्म
हतैनसा २१ आचम्य प्रय
तो नित्यमुभे संध्ये समा
हितः शुचौ देशे जपन् ज
प्यमुपासीत यथाविधिः
२२ यदि स्त्री यद्यवरजः श्रे
यः किंचित्समाचरेत् ॥

र पवित्रदेशमें विधिपूर्वक गायत्री जपकरै २२ ॥
इस्त्री अथवा छोटा मनुष्य कोई अच्छी बात कर
ताहो तो इसबातको ग्रहणकरै अथवा शास्त्रमें

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
७६

अविरुद्ध जो कर्म है उसमें पुरुषका मनसंतुष्ट
हो सो कर्म करे २३ किसीके मतमें धर्म और अ
र्थ ये दोनों कल्याण करनहारे हैं किसीके मतमें
अर्थ और काम कल्याण करन हारे हैं किसीके म
तमें धर्म कल्याण करन हारे हैं अब अपना म
त कहते हैं धर्म अर्थ काम इन तीनों परस्पर विरु

तत्सर्वमाचरेद्युक्तो यत्रवा
स्य रमेन्मनः २३ धर्मार्था
वुच्यते श्रेयः कामार्थौ ध
र्म एव च अर्थ एवेह वा श्रे
य स्त्रिवर्ग इति तु स्थितिः
२४ आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः
पिता मूर्तिः प्रजापतेः मा
ता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता
स्वो मूर्ति रात्मनः २५ ॥

द्ध है परुषार्थसाधनता करके कल्याण कारक
है अर्थात पुरुषको सब वस्तु यही तीनों से होता
है २४ आचार्य परमात्माकी मूर्ति है पिता ब्रह्मा
की मूर्ति है माता पृथिवीकी मूर्ति है सहोदर भा
ई अपनी मूर्ति है २५ ॥

आचार्य्य पिता जेठा सहोदर भाई ये तीनोंका अ
पमान आप दुःखितहो तोभी न करै ब्राह्मणको
तो अवश्य यहवातहै २६ मनुष्यके उत्पत्ति समयमें
जो क्लेश माता पिता सहतेहै उस क्लेशसे उऋण

आचार्य्यश्च पिता चैव माता
भ्राता च पूर्वजः नार्तेनाप्य
वमन्तव्या ब्राह्मणेन विशेष
तः २६ यं माता पितरौ क्ले
शं सहेते संभवे नृणाम्
न तस्य निष्कृतिः शक्या
कर्तुं वर्षशतैरपि २७ तयो
र्नित्यं प्रियं कुर्य्या दाचार्य्य
स्य च सर्वदा ॥

सव जन्मके उपकारसेभी नहीं होसकता इसलि
ये ये सव देवता रूपहै इनोंका अपमान न करः
ना चाहिए २७ माता पिता आचार्य्य यह तीनों

म.
स्मृ.टी.
भा.
११

का प्रिय नित्यही करना तीनोंके संतुष्टहोनेसे सं
भ तपस्या समाप्त होतीहै ११ यह तीनोंकी सेवा प
रमतपहै इनोंकी आज्ञा विना कोई दूसरा धर्म नही

तेष्वेव त्रिषु तुष्टेषु तपः स
र्वं समाप्यते ११ तेषां त्रया
णां शुश्रूषा परमं तप उच्य
ते नैतैरभ्य नतुज्ञातो धर्म
मन्यं समाचरेत् १२ तएव
हि त्रयोलोका तएव त्रय
आश्रमाः तएवहि त्रयो वे
दा स्तएवोक्ता स्त्रयोग्नयः
३.

करना १२ तीनोंलोक तीनों आश्रम तीनोंवेद
तीनोंअग्नि यह तीनोंहै ३. ॥

गार्हपति अग्नि पिताहै दक्षिण अग्नि माताहै आ
हवनीय अग्नि गुरुहै यहतीनों अग्नि बड़तबड़ी
हैं ३१ यह तीनोंके विषयमें सावधानतासे रह॰
नेसे तीनों लोककों जीततोहै बड़तेजस्वी होक

पितावै गार्हपत्योग्नि माता
ग्नि र्दक्षिणः स्मृतः गुरुरा
हवनीयस्तु साग्नित्रेताग॰
रीयसी ३१ त्रिषु प्रमाद्यन्ने
तेषु त्रीँलोकान्विजयेद्गृही
दीप्यमानः स्ववपुषा देववद्
दिविमोदते ३२ इमं लोकं
मातृभक्त्या पितृभक्त्यात्तु
मध्यमं ॥

र देवतोंकीनाई स्वर्गमें आनंद करताहै ३२ मा
ता पिता गुरु यह तीनोंकी भक्तिसें क्रम कर॰
के भूलोक अंतरिक्षलोक ब्रह्मलोकको पाताहै

म॰
स्मृ॰टी॰
भा
७८

७४ जिसमनुष्यने इन तीनोंका आदरकीया उसके
सभधर्म आदरकीएहुवेके औार जिस मनुष्यने इन
तीनोंका आदर नही कियो उसका सभक्रिया

78

गुरु शुश्रूषयात्वेवं ब्रह्मलो
कं समश्नुते ७४ सर्वे तस्या
दृताधर्मा यस्यैते त्रय आदृ
ताः अनादृतास्तु यस्यैते
सर्वास्तस्याः फलाक्रियाः
७४ यावत्त्रयस्ते जीवेयु ।
स्तावन्नान्यं समाचरेत् ते॰
ष्वेव नित्यं शुश्रूषां कुर्या
त्प्रियहितेरताः ७५ ॥

निष्फलभई ७४ जब तक ये तीनों जीतेरहे त
बतक स्वतंत्रहोकर दूसरा धर्मनकरे उन्होंकीसे
वा औार हित औारप्रियकोकरै ७५ ॥

इन्होंकीसेवापूर्वक दूसरा धर्मभीकरै तो मन वाणी
कर्म करके उन्होंसे कहिदेवे उ२ यही तीनोंमे प्र
ख्यकी करनेके जो वस्तुहै सोहोजातीहै यहीसा

तेषामनुपरोधेन पारत्र्यं य
द्यदाचरेत् तत्तन्निवेदये ते
भ्यो मनो वचनकर्मभिः उ
२ त्रिष्वेते ष्विति ह्येषहि पु
रुषस्य समाप्यते एषधर्मः
परः साक्षा उपधर्मोन्य उच्य
ते उ३ श्रद्दधानः शुभां वि
द्या माददीता वरादपि ॥

तादधर्महै और तो उपधर्मभीहै उ३ श्रद्धा करनेः
हुए सुंदर विद्याको नीचसेभी लेना और चांडाल
से भी परमधर्मकोलेना स्त्री सुंदरीको उत्तम कु

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
७९

लसेभीलेना ॥ विष बालक शत्रु इन सबोंसे का
म कराके अमृत सुंदर वचन सुंदर आचरण सुव
र्ण इन सबको ग्रहण करना ॥ स्त्री रत्न वि॰

७९

अन्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं
दुष्कुलादपि ॥ विषादपि
अमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभा
षितम् विविधानि च शिल्पा
नि समादेयानि सर्वतः ॥
स्त्रियो रत्नान्यथो विद्या ध
र्मः शौचं सुभाषितम् वि
विधानि च शिल्पानि समा
देयानि सर्वतः ध॰ ॥

या धर्म पवित्रता सुंदरवचन नानाप्रकारकी का
रीगरी इन सबको जहांसे मिले वहांसे लेना ध॰
ध॰ ॥

आपत्कालआके पढ़े तो क्षत्रिय आदिसे ब्राह्मण प
ढ़े जबतक पढ़े तबतक उस गुरुके पीछे चले
और सेवा करे ४१ उत्तमगतिकी आकांक्षा करता
हुवा मनुष्य क्षत्रिय आदि गुरुकी समीपमें और

अब्राह्मणा दध्ययन मापत्
कालेविधीयते अनुव्रज्या
च शुश्रूषा यावदध्ययनं गु
रोः ४१ नाब्राह्मणे गुरौशि
ष्यो वासमात्यंतिकं वसेत्
ब्राह्मणे वा ननूचाने कांक्ष
न् गति मनुत्तमा ४२ यदि
त्वा त्यंतिकं वासं रोचयेत
गुरोः कुले ॥

सर्व ब्राह्मणके समीपमें भी अत्यंत वासन करे
४२ जब गुरु कुलमें अत्यंत वासकी इच्छाकरे तब
सावधानतासे जब तक शरीरत्याग नहीं तब तक

४०

सेवा करत वास करै पर्यंत ब्राह्मण गुरुके कुलमें
यह नैष्ठिक ब्रह्मचारी कहाताहै ४३ जो ब्रह्मचा
री शरीर त्याग पर्य्यंत गुरुकी सेवा करताहै सो
परिश्रम विना अविनाशी जो ब्रह्मलोकहै उसको
पाताहै ४४ धर्मका जानने वाला ब्रह्मचारी जबत

गुरोः परिचरेदेन माशरी॰
र विमोक्षणात् ४३ आस॰
माप्तेः शरीरस्य यस्तु शुश्रू
षते गुरुं सगच्छत्यञ्जसा
विप्रो ब्राह्मणः सद्मशाश्व॰
तम् ४४ नपूर्वं गुरवे कि
ञ्चि दुपकुर्वीत धर्मवित्
स्नास्यंस्तु गुरुणाज्ञप्तः श
क्त्या गुर्वर्थ माहरेत् ४५

क पढता रहै तब तक सेवा छोडके दूसरा उपका
र गुरुका न करै जब पढचुके तब समावर्तनके
निमित्त अर्थात् पढनेके समाप्तिमें पितृकुलमें
आनेकेलिये विवाहकेअर्थ स्नानकरता हुआ गु
रुकी आज्ञापाके जो गुरुमांगै सो दक्षिणाशक्तिपू
र्वकदेवै ४५

गुरुकों प्रसन्न करताहुआ भूमि सुवर्ण गौ घोडा
छाता जूता आसन साग वस्त्र इन सबको देवें
॥४६॥ आचार्य्यके मरणोतनर गुरुपुत्र गुण करके युक्तहो वा गुरुकी स्त्रीहो किंवा गुरुके सपिण्ड सं-

क्षेत्रं हिरण्यं गामश्वं छत्रो
पानहमासनम् धान्यं शा
के च वासांसि गुरवे प्रीति
मावहेत् ॥४६॥ आचार्य्येत्व
लूपेते गुरुपुत्रे गुणान्विते
गुरुदारे सपिंडेवा गुरुवद्द
त्ति मावरेत् ॥४७॥ एतेष्व वि-
द्यमानेष्व स्थानासन विहा
रवान् ॥

बंधि संबंधी हो तो इन सबोंके गुरुकीनाई मानना
॥४७॥ और जो नैष्ठिक ब्रह्मचारीहै सो इन सबोंके प्र
भावमें गुरुकें स्थान और आसन में विहार करता

ऊसा अग्निकी सेवाकरता अपने देहको साधन
करै अर्थात् जीवको ब्रह्म प्राप्ति योग्यकरै २४८
इस प्रकारसे जो ब्राह्मण अखंडित ब्रह्मचर्य्यको

अग्रेजानोग्निशुश्रूषो साध
येद्देहमात्मनः २४८ एवं च
रतियो विप्रो ब्रह्मचर्य्यम
विप्लुतः सगच्छत्युत्तमंस्था
ने नचेहा जायते पुनः ।
२४९ इति मानवे धर्मशा॰
स्त्रे भृगु प्रोक्तायां संहिता
यां द्वितीयोध्यायः २ ॥

करताहै सो उत्तमस्थानमें जाताहै संसारमें फेर॰
नही आताहै २४९ इतिश्री मनुस्मृति भाषा टीका
यां द्वितीयोध्यायः २ ॥

छत्तीस वर्ष तक अथवा अठारावर्ष तक वा नव
वर्ष तक किंवा जब तक वेद ग्रहण न करै तब
तक तीनों वेदके पढनेका व्रत करना योग्य है
१ तीनों वेदको वा दो वेदको अथवा एकही वेद
को क्रमसे पढके अखंडित व्रत वाला पुरुष गृह

षट्त्रिंशदाब्दिकं वर्यं गु॰
रौ त्रैवेदिकं व्रतं तदर्द्धिक
मार्दिकं वा ग्रहणान्तिक
मेववा १ वेदानधीत्य वे॰
दौवा वेदं वापि यथाक्रम
अविलुत ब्रह्मचर्यो गृह॰
स्थाश्रम माविशेत् २ तं प्र
तीतं स्वधर्मेण ब्रह्मदाय ह
रं पितुः ॥

स्थाश्रममें आवें २ धर्मका अनुष्ठान करनेसें प्रसि
द्ध जो ब्रह्मचारी हो और पितासे वेद पढाहो अ
थवा जो ब्रह्मचारी हो और पितासे वेद पढना चाहे और आचार्या॰
थीत् पितासे वेद पढना चाहे और आचार्या॰

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
८२

82

आदिसे पढना तो गौणहै पिता पढानेके योग्य नहीं तो आचार्यआदिसे पढना माला पहिरेहो शय्यापरबैठाहो तो उसको गौ मारके उसके रक्त से मधुपर्क बनाके पूजन करै आचार्य वा पिता ॥

शयिने तल्प आसीन मर्हये त्प्रथमं गवा ॥ गुरुणा नुमतः स्नात्वा समावृत्तो । यथाविधिः उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्वि ताम् ४ ॥

गुरुकी आज्ञा पाके स्नान करके विधिसे समाव॰ र्तन कर्मको प्राप्तहोके अपने वर्णकी लक्षणस हित जो कन्याहै उससे विवाह करै ४ ॥

जो कन्या माताकी सपिण्ड नहो अर्थात् मातृ कु
लके संबंधमें पांच पुरुषकी भीतर नहो और मा
ताकी सगोत्रा नहो अर्थात् जबतक जन्मनामका
ज्ञानरहै वंशमें तबतक गोत्र कहाताहै इसमत
हो पिताके गोत्रमें और पिताके सपिंडमें नहो अर्था
त् पितृ कुलके संबंधमें सात पुरुषके भीतर न
हो सपिण्ड शब्दका अर्थ यहहै कि पिण्ड कहियेदे
ह तिसका जो अवयवकहिये हाथ पांव नासि
का आदि ये सब लड़का लड़की में पिता माता
का आताहै सो साक्षात् वा परंपरा करके जिसमें

असपिण्डा च या मातुरसगो
त्रा च या पितुः सा प्रशस्ता
द्विजातीनां दारकर्मणि मै
थुने ५

रहै सो सपिण्ड कहाताहै जैसे मा
ता पिता का हस्त पाद आदि पुत्र और कन्यामें सा
क्षात् आताहै और पौत्र पौत्री में परंपरा से आता
है जैसे पिता का हस्त पाद आदि पुत्रमें आया और
पौत्रमें पुत्रका हस्त पाद आदि गया तो वह हस्त
पाद आदि पितामहका ठहरा पुत्रके द्वारसे यह
परंपरा कहाताहै इसी प्रकारसे सबका जानना
ऐसी कन्या ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों को दार कर्म
और मैथुन कर्ममें अच्छीहै अर्थात् जो कर्म स्त्री
पुरुष दोनों से होताहै जैसे अग्निहोत्र और पुत्रो
त्पादन इस कर्ममें प्रशस्तहैं ५ ॥

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
८२

83

गो बकरी धन अन्न इन्ह सभोंकरिके बडी संपत्तिसे
युक्तहो तोभी जो आगे दशकुल कहेंगे इनसें वि
वाह न करना ६ हीनसे क्रिया जिसमें और पुरु
षसे रहितहै वेदका पढना जिसमें हीनेंहै बहु
त रोमवाले पुरुष और स्त्री जिसमेंहै वा बवासीरकी

महान्त्यपि समृद्धानि गोजा
विधनधान्यतः स्त्रीसंबंधे
दशैतानि कुलानि परिवर्ज
येत् ६ हीनक्रियं निष्पुरु
षं निश्छन्दो रोमशार्शसम्
क्षयामयाव्यपस्मारि श्वि
त्रिकुष्ठि कुलानि च ७ ॥

बीमारी जिस कुलमेंहै क्षयी अर्थात् राज अग्नि॰
मंदकी मृगी श्वेतकुष्ठ और जो अनेक प्रकारके
कुष्टहै इन सभोंमेसे कोई रोग करके युक्त कुलहो
तो पूर्वकथित धनधान्यआदिसे युक्तहो तो उस
कुलमें विवाह न करना ७ ॥

कपिल वर्णकी अधि अंगकी अर्थात् बहुरी रोगि
णी विना रोमवाली अतिलोम वाली बहुत बोल
ने वाली पिंगल वर्ण वाली ८ नक्षत्र वृक्ष म्लेक्ष
पर्वत पक्षी सर्प दास भयानक इन सभोंके नाम

नोद्वहेत्कपिलां कन्यां नाधि
काङ्गीं नरोगिणीम् नालो-
मिकां नाति लोमां नावाचा
टां त्र पिंगलां ८ नर्क्ष वृक्ष
नदी नाम्नीं नांत्य पर्वत ना
मिकां नपक्ष्यहि प्रेष्यनाम्नी
नच भीषण नामिकां ९ ८
अव्यंगाङ्गीं सौम्यनाम्नीं हंस
वारण गामिनीम् ॥

की नाईं जिसका नामहै उससे विवाह न कर-
ना ९ अंगसे हीन नहो और सुंदर जिसका ना-
म हो हंस और हाथी की गति के समान जिस-
की गति हो कर केश लोम दांत जिसका सूक्ष्म

हो इससे विवाह करना ११ जिस कन्याके भाई न
हो और पिता का नाम न जानाहो इसके विवाह
न करना पुत्रिका कारण शंका करके और अधर्म
शंका करके अर्थात् विना भाईकी कन्यासे विवा
ह करनेंमे पहिला लडका इस कन्याके पिता का

नोपयच्छेत तांप्राज्ञः पुत्रि
का धर्मशंकया ११ यस्या-
स्तु नभवेद्भ्राता न विज्ञाये-
त वा पिता नेत्तुलोम केश
टशनो स्हेगी सुहहे त्ति
यम् ११ सवर्णाग्रे द्विजाती-
नां प्रशस्ता दारकर्मणि का
मतस्तु प्रवृत्ताना मिमाः ।
स्युः क्रमशो वराः १२ ॥

कहावेगा और पिताकेनाम जानें विना अधर्म हों-
गा ११ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके अपनी जातिके ।
स्त्रीसे विवाह करना श्रेष्ठहै और कामसे और जाति
की कन्यासे विवाह करै तो आगे जो रीति कहैंगे उ
सरीतिसे करै परंतु वह श्रेष्ठ नहींहै १२ ॥

शूद्रकी एकहै भार्याहै अर्थात् अपनेही वर्णकी
है वैश्यके दो एक अपने वर्णकी और एक शूद्रव:
र्णकी क्षत्रिय के तीन एक अपने वर्णकी दो पूर्व
वर्णकी ब्राह्मण के चार एक अपने वर्णकी तीन पू

शूद्रैव भार्या शूद्रस्य साच
स्वाचविशः स्मृते तेच स्वाचै·
व राज्ञश्च ताश्च स्वाचाग्रज
न्मनः ४ नब्राह्मण क्षत्रिय
यो रापद्यपिहि तिष्ठतोः क
स्मिंश्चिदपि वृत्तान्ते शूद्रा भा
र्योप दिश्यते ५ हीन जा·
ति स्त्रियं मोहा दुद्वह न्तो·
द्विजातयः ॥

वें वर्णकी ४ अब निषेध करतेहैं आपत्कालमेंभी
ब्राह्मण क्षत्रिय को शूद्र वर्णकी भार्या कोई इति
हासमें नहींहै ५ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यये तीनों
वर्ण मोहसे हीनजातिके कन्यासे विवाह करे तो

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
८५

संतान सहित अपने कुलको झटपट अकुल कर
डालतेहैं ॥ शूद्रको कन्याके साथ विवाह करने
पतित होताहै यह अत्रि ऋषि कामतहै और औत
थ्य ऋषिकाभी मतहै और उसकन्यामें पुत्र होनेसे
पतित होताहै यह शौनक ऋषिकामतहै १६ शू॰

कुलान्येव नयन्त्याशु ससन्ता
नानि शूद्रताम् ॥ शूद्रावे
दी पतत्यत्रे रुतथ्य तनयस्
यच शौनकस्य सुतोत्पत्त्या
तदपत्य तयाभृगोः १६ शू॰
द्रो शयन मारोप्य ब्राह्मणो
यात्यधो गतिं जनयित्वा ॰
सुतं तस्यां ब्राह्मण्या देव
हीयते १७ ॥

द्रको कन्याको शय्यामें रखके ब्राह्मण नरकमो
जाताहै और उसमें पुत्र होनेसे ब्राह्मणके कर्म
से हानि होतीहै १७ ॥

85

जिस ब्राह्मणके देव पितृ कार्यमें शूद्रकी क॰
न्या प्रधानहै अर्थात् उसकार्यको वही करती॰
है उसका दिया हव्य और कव्यको देवता और पि
तर नहीं करते और वह ब्राह्मण स्वर्ग नहीं जा॰ ॥ ग्रहस्य
ता देवताओंके देने योग्य वस्तुको हव्य कहतेहैं और
पितरों के देने योग्य वस्तुको कव्य कहतेहैं ८

दैवपैत्र्यातिथेयानि तत्प्र॰
धानानि यस्यतु नाश्नन्ति
पितृदेवास्तं नच स्वर्गं स
गच्छति ८ वृषली फेन
पीतस्य निःश्वासोपहतस्य
च तस्यां चैव प्रसूतस्य नि
ष्कृतिर्न विधीयते ९ ॥

शूद्रके कन्याके ओठको जिस ब्राह्मण ने चुम्ब॰
न किये और उस कन्याके श्वाससे उस ब्राह्मण
का अपवित्र भया और पुत्र रूपहोकर आप उस॰
में उत्पन्न भया अर्थात् पुत्र जो होताहै सो आप
ही उत्पन्न होताहै मानो आपही उसमें उत्पन्न होता
है उस ब्राह्मणका प्रायश्चित अर्थात् उस पाप
के छूटनेकी उपाय शास्त्रमें नहींहै ९ ॥

म० स्मृ०टी० भा० ८६

86

चारो वर्णकी इसी लोकमें और परलोकमें हित
अहित करने वाला आठ प्रकारका विवाहहै इस
को हे ऋषिलोगो हमसे जानिए यह बातको भृगु
मुनि कहतेहैं २० ब्राह्मदैव आर्ष प्राजापत्य आसुर

चतुर्णा मपि वर्णानां प्रेत्य
चेह हिता हितान् अष्टावि
मा न्समासेन स्त्रीविवाहा
न्निबोधत २० ब्राह्मोदैव स्त
थैवार्षः प्राजापत्य स्तथा-
सुरः गांधर्वो राक्षस श्चैव
पैशाच श्चाष्टमो धमः २१
योयस्य धर्म्यो वर्णस्य गुण
दोषौ च यस्ययो तद्वः सर्व
प्रवक्ष्यामि प्रसवे च गु-
णा गुणान् २२

गांधर्व राक्षस पैशाच इसमें आठवां अधमहै २१
जो विवाह जिस वर्णको धर्मसे युक्तहै और जिस
विवाह का जो गुणदोषहै और जिसविवाहसे पुत्र
होनेमें जो गुण अगुणहै सो सब आपलोगोंसे ह-
म कहेंगे २२

प्रथमसे छः विवाह ब्राह्मणको अच्छाहै और क्ष-
त्रियके ऊपरका आसुर आदि चार अच्छाहै वैश्य
शूद्रको भी राक्षसको छोडके क्षत्रियको जो कहा
है सो अच्छाहै २३ पहिलेसे चार विवाह ब्राह्मण-

षडानुपूर्व्या विप्रस्य क्षत्रस्य
चतुरो वरान् विट् शूद्रयोस्तु
तानेव विद्या द्धर्म्या नराक्ष-
सान् २३ चतुरो ब्राह्मणस्या-
द्या न्प्रशस्ता न्कवयो विदुः
राक्षसं क्षत्रियस्यैक मासुरं
वैश्य शूद्रयोः २४ पंचानां तु
त्रयो धर्म्या द्वावधर्म्यौ स्मृता
विह ॥

को क्षत्रियको राक्षस वैश्यको आसुर बहुत अच्छा
है २४ जिसमेंभी प्रजापत्य गांधर्व राक्षस येतीनो
धर्म करिके युक्तहै सामान्य से चारो वर्णोंकी क्ष-
त्रियको एवं कथित से प्राजापत्य नही पायाथा

म॰ स्मृ॰टी॰ भा॰ ८३

इसकी आज्ञा हुई और राक्षस वैश्य शूद्रको पूर्व
कथितसे नही पायाथा इसकी भी आज्ञाभई २५
गांधर्व और राक्षस ये दोनो क्षत्रिय को प्रति स्मृ॰
ह्योंहै २६ अब आदि विवाहोंको लक्षण कह

87

पैशाच श्चासुरश्चैव न कर्त॰
व्यौ कदाचन २५ पृथगपृथ
क् वा मिश्रौवा विवाहौ पू
र्वे चोदितौ गांधर्वो राक्षस
श्चैव धर्म्यौ क्षत्रस्य तौ स्मृ॰
तौ २६ आच्छाद्य चार्चयित्वा
च श्रुति शीलवते स्वयं आ
हूय दानं कन्याया ब्राह्मो॰
धर्मः प्रकीर्तितः २७ ॥

तेहै वर और कन्याको कपडा गहना देके व॰
रको बुलाको कन्याको देवे वह ब्राह्म बाह्म वि
वाह कहाताहै २७ ॥

यज्ञमें ऋत्विक को अलंकार सहित कन्याको देवै
वह दैव विवाह कहाताहै ४८ एक वा दो गौ और बै
ल वरसे लेके कन्याको देवै वह आर्ष विवाह क॰

यज्ञेन वितते सम्यगृत्विजे
कर्म कुर्वते अलंकृत्य सुता
दानं दैवं धर्मं प्रचक्षते ४८
एकंगोमिथुनं द्वेवा वरा
दादाय धर्मतः कन्याप्रदा
नं विधिवदार्षो धर्मः स उ
च्यते ४९ सहोभौ चरतां धर्म
मिति वाचानुभाष्य च ॥

हाताहै ४९ वर और कन्या ये दोनो साथ धर्मको
करैं ऐसा वाणी कहके वरको और कन्याको पू
जा करके कन्याको देवै वह प्राजापत्य विवाह

म॰ स्मृ॰टी॰ भा॰ ८८

88

कहातांहै ३० कन्याको और कन्याको जातिको
द्रव्यदेके कन्या ग्रहण करना यह आसुर विवा॰
ह कहातांहै ३१ वर और कन्याकी परस्पर इच्छा

कन्याप्रदान मभ्यर्च्य प्राजा
पत्यो विधिः स्मृतः ३० ज्ञाति
भ्यो द्रविणं दत्वा कन्यायै
चैव शक्तितः कन्याप्रदानं
विधिव दासुरो धर्म उच्यते
३१ इच्छया न्योन्यसंयोगः
कन्यायाश्च वरस्य च गांधर्वः
सतु विज्ञेयो मैथुन्यः का॰
म संभवः ३२ ॥

करके जो संयोग भया सो गांधर्व विवाह कहा॰
तांहै वह मैथुनके हितहै और काममें उत्पन्न
है ३२ ॥ ॥

मारिके छेदिके भेदिके हठ करके रोती पुकारः
ती कन्याको गृहसे लेजाना यह राक्षस विवाह
है सुप्त मत्तीहै मदनीय द्रव्यकरके मत्तहै वार्ति
क पैतिक श्लैष्मिक सन्निपातिक दुःख करिके

हत्वा छित्वा च भित्वा च ।
क्रोशंतीं रुदतीं गृहात् प्रस
ह्य कन्या हरणं राक्षसो वि॰
धिरुच्यते सुप्तां मत्तां प्र
मत्तां वा रहो यत्रोपगच्छति
स पापिष्ठो विवाहानां पैशा
च श्चाष्टमो धमः ब्रूष ब्राह्मि॰
देव द्विजाग्र्याणं कन्यादा॰
न विशिष्यते ॥

प्रमत्तहै उससे एकांत में भोग करना सो पैशा॰
च विवाहहै वह सब विवाहों में अधमहै ब्रूष
ब्राह्मण को जलसे कन्यादान करना ब्राह्मोहै
क्षत्रिय आदिकों बिना जलही परस्पर को इच्छा

म. स्मृ. टी. भा. ८९

89

से वाणीमात्र कहनेसे विवाह होताहै ३५ जिस
विवाहका जो गुण मनुजीने कहाहै सोहै, ब्राह्म-
ण लोगो इस अच्छे प्रकारसे कहतेहै आप लोग-
हनिए ३६ ब्राह्म विवाहसे पुत्र उत्पन्न हो और अ-

इतरेषां तु वर्णाना मितरे
तरकाम्यया ३५ यो यस्यैषां
विवाहानां मनुना कीर्तितो
गुणः सर्वं शृणुत तं विप्राः
सर्वं कीर्तयतो मम ३६ द-
शपूर्वा परावंश्या नात्मनं चै
कविंशकं ब्राह्मीपुत्रः सुकृ
त कृ न्मोचयेदेनसः पितॄ
न् ३७ ॥

छे कर्मोंका करै तो दश पुरुष ऊपरके और दश
पुरुष नीचेके एकीसवां अपने को पापसे छु
डाताहै ३७ ॥ ३७ ॥

देव विवाहसे उत्पन्न पुत्र अच्छे कर्मको करनेवाला
हो तो सात पुरुष नीचेको और अपने को पाप सात पुरुष
से छुडाताहै आर्ष विवाहसे उत्पन्न तीन तीन उ उपरके ३४
पर और नीचेको प्राजापत्य विवाह से उत्पन्न छ
छ नीचे उपर पुरुषको पापसे छुडाताहै ३४

दैवोढाजः सुतश्चैव सप्त
सप्त परावरान् आर्षोढाजः
सुतस्त्रीन् त्रीन् षट् षट् का
योढजः सुतः ३५ ब्राह्मा
दिषु विवाहेषु चतुर्ष्वेवानु
पूर्वशः ब्रह्म वर्चस्विनः पु
त्राः जायन्ते शिष्ट संमताः
३६ रूप सत्वगुणोपेता ध
नवन्तो यशस्विनः ॥

छे कर्मोको करने वालाहो यह सर्वत्र जानना
३५ ब्राह्म आदि चार विवाहसे उत्पन्न पुत्र ब्रह्मतेज
स्वी होताहै और भले लोगोंके संमत होताहै ३६
रूप गुण धन यश भाग्य धर्म इन सभों से युक्त
होताहै और सब वर्ष जीताहै ३७ ॥

म॰
स्म॰टी॰
भा
३॥

और जो चार विवाह है इससे जो उत्पन्न पुत्र हो
ताहै सो यातक होताहै और झूठ बहुत्त बोलता
है ब्रह्म धर्मका शत्रु होताहै अनिंदित विवाह॰

९०

पर्याप्तभोगा धर्मिष्ठा जीवं
ति च शतं समाः ४१ इतरे
षु तु शिष्टेषु नृशंसा सत्य
वादिनः जायंते दुर्विवाहे॰
षु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः
४२ अनिंदितैः स्त्रीविवाहै॰
रनिंद्या भवति प्रजा निंदितै
र्निंदता नृणां तस्मान्निंद्या
न्विवर्जयेत ४२ ॥

से अनिंदित प्रजा उत्पन्न होतेहै और निंदित वि
वाह से निंदित प्रजा उत्पन्न होतेहै इसलिये निंदि
त विवाहको नही करना चाहिये ४२ ॥

अपने वर्णकी जो कन्याहै इसेमें हस्तग्रहणका संस्कार जानना और दूसरे वर्णकी कन्याके साथ विवाह करने में आगें जो विधि कहेंगे सो जान॰ ना अरु क्षत्रिया कन्या बाणको ग्रहण करै और ॰ वैश्यकी कन्या पयना अर्थात् वृषभको हांक

पाणिग्रहणसंस्कारः सवर्णा स्वपदिश्यते असवर्णा स्वयं ज्ञेयो विधिरुद्वाह कर्मणि अरु शरः क्षत्रियया ग्राह्यः प्रतोदो वैश्य कन्यका व॰ सनस्य दशाग्राह्या शूद्रयो त्कृष्टवेदने अथ ऋतुका॰ लाभिगामी स्या त्स्वदार निरतः सदा ॥

नेके वस्त्र को ग्रहणकरे शूद्रको कन्या वस्त्रकी दशाको ग्रहण करे बडो जाति वालेसे विवाह करनेमें अथ ऋतुकाल अर्थात् प्रतिमासमें ॰ स्त्रियोंके योनिद्वारसे रुधिर का निकरना और ग संधारणके योग्य स्त्रियोंकी अवस्था विशेष जो

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
९१

91

सो ऋतु कहाताहै मैंस्त्रीसो भोगकरै और दूसरीके
स्त्रीसे गमनको नही करै परंतु अपनी स्त्रीके सा
थ गमन करनेमें ऋतुकालमें भी पर्वको वराय
देवै पर्वये कहातेहै कि कृष्णपक्षकी अष्टमी औ
र चतुर्दशी अमावस्या पूर्णिमा रवि संक्रांति औ
र स्त्रीका मनहो तो विना ऋतुकाल संभोग

पर्ववर्जं व्रजेच्चैनां तद्व्रतो
रतिकाम्यया ४५ ऋतुः स्वा
भाविकः स्त्रीणां रात्रयः षो
डश स्मृताः चतुर्भि रितरैः
सार्द्धं महोभिः सद्विगर्हि
तैः ४६ तासा माद्या श्चत
स्रस्तु निन्दितै कादशी
यथा त्रयोदशी च शेषास्तु
प्रशस्ता दश रात्रयः ४७ ।

करै यह नियमहै ऋतुकालमें समीपरहै और
सामर्थ्य सहितहो दो पुरुष तो अवश्य गमन
करै नही तो बडादोष होताहै ऋतुकालकी
सोलह रात्रिहै ४६ तिसमें पहिले चार और इग्यारही
तिरैह रात्रि निन्दितहै दशरात्रि अच्छी है ४७ ॥

ॐ

समरात्रिमें पुत्रहोताहै जैसे छटईं अठईं दशाईं बा रहीं चौदहीं सोलही और विषम रात्रिमें कन्या होतीहै जैसे पंचईं सतईं नवईं इगारही तेरही पंदरही इसलिये पुत्रार्थी पुरुष समरात्रिमें स्त्री संभोगको करै ४८ पुरुषकी वीर्य्य अधिकसे पुत्र होताहै विषम रात्रिमें भी और स्त्रीके वीर्य्य अ- धिकसे कन्या होताहै समरात्रिमेंभी इसलिये ।

युग्मासु पुत्रा जायंते स्त्रियो युग्मासु रात्रिषु तस्मा युग्मा सु पुत्रार्थी संविशे दार्तवे स्त्रियं ४८ पुमान्पुंसोधिके शुक्रे स्त्रीभवत्यधिके स्त्रि- याः समे पुमान्स्त्रियौ वा क्षीणेल्पेच विपर्ययः ४९

अधिक वस्तुओंको भोजनसे अपाने वीर्य्यको अधि ककरै और निष्काम वस्तुके भोजनसे और थोडा खिलानेसे स्त्रीके बीजको कामकरै और स्त्री पुरु षका बीज समरहै तो नपुंसक होताहै अथवा कन्या और पुत्र दोनो उत्पन्न होताहै और स्त्री पुरु ष दोनो का वीर्य्य कमरहै अर्थात् निस्साररहै तो गर्भको संभव नही होती ४९ ॥

निंदा युक्त जो आठ रात्रिहैं तिसमैं स्त्रीगमन नहीं करनेसे जिस आश्रममें रहै तिसमैं ब्रह्मचारी कहाताहै ५० पिता कन्याका थोडाभी शुल्क अर्थात् किछुलेके कन्या देना नलेवै लोभ करके शुल्क लेनेसे कन्या वेचनवाला कहाताहै ५१

निंद्या स्वष्टासु चान्यासु स्त्रियो रात्रिषु वर्जयन् ब्रह्मचार्येव भवति यत्र तत्राश्रमे वसन् ५० न कन्यायाः पिता विद्वान् गृह्णीयाच्छुल्कमण्वपि गृह्णन् शुल्कं हि लोभ स्यान्नरोपत्यविक्रयी ५१ स्त्री धनानि तु ये मोहा दुपजीवन्ति बांधवाः नारी यानानि वस्त्रं वा ते पापा यान्त्यधोगतिम् ५२

स्त्रियोंका धनवान अर्थात् सवारी वस्त्र इन सबको मोहसे लेके उपजीवनकरते जो बांधव लोगहैं सो बडे पापीहैं और नरकमैं जातेहैं ५२

कोई ऋषिने आर्ष विवाहमें देगो लेना कहाहै सो
नहहै थोड़ा वा बहुत जो लेनाहै सो वेचनेकहा
नाहै ॥ जिस कन्याके शुल्कको जाति लोग न

आर्षे गो मिथुनं शुल्कं के
चिदाहुर्मृषैव तत् अल्पो
ऽप्येवं महान्वापि विक्रय
स्तावदेवसः ॥ यासां ना
ददते शुल्कं ज्ञातयो नस
विक्रयः अर्हणं तत्कुमारी
णां मानृशंस्यंच केवलं ॥
पितृभिः भ्रातृभि श्चैताः प
तिभि र्देवरै स्तथा ॥

ही लेते सो वेचना नही कहाता शुल्क न लेना
यह तो कुमारी का पूजनहै और दयाहै बहुत
कल्याणकी इच्छा करते हार जो पिता भाई पति

म॰
स्क॰टी॰
भा॰
९३

देवरहै ये सब गहना और वस्त्रमें स्त्रियोंको पूजाक
रै ५५ जिस कुलमें स्त्रियोंकी पूजा होताहै उसकु
लमें देवता रमण करतेहैं और जहां स्त्रियोंकी पू
जा नही होती वहां सबक्रिया निष्फल होतीहै

९३

पूज्याभूषयितव्याश्च बहुक
ल्याणमीप्सुभिः ५५ यत्रना
र्यस्तु पूज्यंते रमंते तत्र देव
ताः यत्रैतास्तु नपूज्यंते स
र्वास्तत्रा फलाः क्रियाः ५६
शोचंति जामयो यत्र विन॰
श्यत्याशु तत्कुलम् न शोचं
ति तु यत्रैता वर्द्धते तद्धि॰
सर्वदा ५७ ॥ ॥

५६ जिस कुलमें स्त्री लोग शोकको करतीहै वह॰
कुल फट पट नष्ट होजाताहै और जिस कुलमें
स्त्री लोग शोकको नही करतीहै वह कुल सदा
बढताहै ५७ ॥ ॥

पूजाको विनापापस्त्री लोग जिस कुलको शाप देतीहैं वह कुल चारों ओरसे नष्ट होजाताहै ५८ इसलिये विभूतिका इच्छा करनेहार जो पुरुषहै

जामयो यानि गेहानि शप
न्त्य पतिपूजिता तानि कृ
त्याहतानीव विनश्यन्ति स
मन्ततः ५८ तस्मादेताः स
दा पूज्या भूषणाच्छादनाश
नैः भूतिकामैर्नरैर्नित्यं स
त्कारेषूत्सवेषु च ५९ संतु
ष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भा
र्या तथैव च ॥

सो गहना वस्त्र भोजन से स्त्रियोंकी पूजा सदा करै ५९ जिस कुलमें स्त्रीसे पति प्रसन्न रहताहै और पतिसे स्त्री प्रसन्न रहतीहै उस कुलमें ।

म॰
स्म॰टी॰
भा॰
१७४

९४

भव कारके कल्याणहै ९॰ जब स्त्री पतिको प्रस
न्न न रोचे तो संतति कहांसे होगी ९१ स्त्रीके प्र॰

यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्या
णं तत्र वै ध्रुवम् ९॰ यदि हि
स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमो
दयेत् अप्रमोदात्पुनः पुंसः
प्रजनं न प्रवर्तते ९१ स्त्रियां
तु रोचमानायां सर्वं तद्रोच
ते कुलम् तस्यां त्वरोचमा
नायां सर्वमेव न रोचते ९२

सन्न होनेसे कुल प्रसन्न रहताहै और स्त्रीके अप्रस
न्न रहनेसे सब कुल अप्रसन्न रहताहै ९२ ॥

निंदित विवाह क्रिया लोप वेदका न पढना ब्रा॰
ह्मणका अपमान इन सभोंसे कुल अकुलता को
पाताहै ६३ चित्र लेखन आदि कर्म आज लेनेके
निमित्त धन देना केवल शूद्र जातिकी स्त्रीसे उ

कुविवाहैः क्रियालोपैर्वेदा
नध्ययनेनच कुलान्यकुल
तां यान्ति ब्राह्मणानि क्रम
णेच ६३ शिल्पेन व्यवहारे॰
ण शूद्रापत्यैश्च केवलैः ।
गोभिरश्वैश्च यानैश्च कृष्या
राजोपसेवया ६४ अयाज्य
याजनैश्चैव नास्तिक्येन च
कर्मणाम् ॥

त्पत्ति गौ घोडा रथ इन सभों को मोललेना ।
और खेती करना राजसेवा करना इन स
भोंसे ६४ और यज्ञ करानेसे और मंत्रके अभाव

और यज्ञ करानेके योग्य नहीं है

म० स्मृ०टी० भा० ४५

95

से फट पट जल विनाशके प्राप्त होताहै ४५ जो ज
लमंत्रसे सहितहै और बहुत धनसे रहितहै सो ब
डाजल कहाताहै बडा यशको पाताहै ४६ गृह
सूत्रमें जो कर्म कहेहैं और पंचयज्ञ अर्थात् वेद

जलान्याशु विनश्यंति या०
नि हीनानि मंत्रतः ४५ मं०
त्रतस्तु समृद्धानि जलान्य
ल्प धनानिच जलसंज्ञां च
गच्छंति कीर्तिंनिच महद्यशः
४६ वैवाहिकेऽग्नौ कुर्वीत गृह्यं
कर्म यथाविधि पंचयज्ञ वि
धानंच पक्तिं चान्वाहिकीं०
गृही ४७ ॥ ॥

का पठन देव ऋषि पितरका तर्पण होम बलि अ
तिथिके भोजन का विधान नित्यभोजन पाक इन
सभोंका कर्म करनेसे जीवकानाश होताहै विवा
ह समयके अग्निमें विधिसे करना ४७ ॥

गृहस्थको चुल्हा सील लोढ़ा बढ़नी ओखरी
मूसर जलका घड़ा ये पांच सूना अर्थात् वध
का स्थान इन सभोंका कर्म करनेसे जीवका
नाश होताहै ६८ इस पंचसूनाके प्रायश्चित्तके

पंचसूना गृहस्थस्य चुल्ली
पेषण्युपस्करः कण्डनी चो
द कुम्भश्च वध्यते यास्तु वा
हयन् ६८ तासां क्रमेण
सर्वासां निष्कृत्यर्थं महर्षि
भिः पंच क्लृप्ता महायज्ञाः
प्रत्यहं गृहमेधिनाम् ६९ ।
अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृ
यज्ञस्तु तर्पणम् ॥

लिये पांच महायज्ञको गृहस्थ लोग नित्यहीक
रै ६९ वेदका पढ़ना देव ऋषि पितरोंका तर्प-
ण करना होम करना बलि देना अतिथिका

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
९६

पूजन करना इन सभोंके क्रमसे ब्रह्मयज्ञ पितृ यज्ञ भूतयज्ञ मनुष्ययज्ञ कहतेहैं ७० शक्तिपूर्व क इन पांचो महायज्ञोंको जो त्याग नहीं करता है सो गृहमें वासकरतेभी सूना दोषसे लिप्त न

96

होमो दैवो बलिर्भौतो नृय
ज्ञोतिथिपूजनम् ७० पंचैता
न् यो महायज्ञा न्नहापय
ति शक्तितः सगृहेपि वस
न्नित्यं सूनादोषै र्नलिप्यते
७१ देवतातिथिभृत्यानां पि
तॄणा मात्मनश्चयः ननिर्व
पति पंचाना मुच्छ्वसन्न स
जीवति ७२ ॥

ही होता ७१ जो मनुष्य देवता अतिथि भृत्य पि तर इन सभोंको और अपनेको भोजन नहीं दे॰ ता सो जीते हुए मुआहै ७२ ॥

अहुत हुत प्रहुत ब्राह्महुत प्राशित ये पांचयज्ञ
है ७३ इन पांचोंका जप होम भूत बलि अति-
थि पूजा पितृतर्पण क्रमसे कहतेहैं ७४ जो

अहुतं च हुतं चैव तथा प्र-
हुतमेव च ब्राह्मं हुतं प्रा-
शितं च पंचयज्ञान् प्रचक्ष-
ते ७३ जपोऽहुतो हुतो हो-
मः प्रहुतो भौतिको बलिः
ब्राह्मं हुतं द्विजाग्र्यार्चा प्रा- ग्रा
शितं पितृतर्पणम् ७४ स्वा-
ध्याये नित्ययुक्तः स्याद्देवे
चैवेह कर्मणि दैव कर्म-
णि युक्तो हि विभर्तीदं च-
राचरम् ७५ ॥ ॥

मनुष्य नित्यही वेद पढताहै अग्निमें होम क-
रताहै सो संपूर्ण संसारको धारण कर सकता ७५
है ७५ ॥

म० स्मृ० टी० भा० ९३

97

अग्निमें जो आहुति पडतीहै सो सूर्य्यके समीप जातीहै सूर्य्यसे वृष्टि होतीहै वृष्टिसे अन्न होताहै अन्नसे प्रजा होतीहै ७६ जिस प्रकारसे वायुको आश्रय करके सभ जीव रहतेहैं तिसी प्रकारसे गृहस्था

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगा
दित्य मुपतिष्ठते आदित्या
ज्जायते वृष्टि र्वृष्टेरन्नंततः ।
प्रजाः ७६ यथा वा युंसमा
श्रित्य वर्त्तन्ते सर्व्व जन्तवः ।
तथा गृहस्थ माश्रित्य वर्त्त
न्ते सर्व्व आश्रमाः ७७ यस्मा
त्त्रयो प्याश्रमिणो ज्ञाने ना
न्नेन चान्वहं गृहस्थे नैव ।
धार्य्यन्ते तस्मा ज्जेष्ठा श्रमो गृ
ही ७८

श्रमको आश्रय करके सभ आश्रम रहतेहैं ७७ वेदके अर्थको कथन करके अन्नका दान देके तीनों आश्रमोंको गृहस्थाश्रमी दिन दिन धारण करताहै इसलिये गृहस्थाश्रमी ज्येष्टहै ७८ ॥

परलोकमें अक्षय स्वर्गकी और इस लोकमें सुखकी इच्छा करणे वाला पुरुष इसगृहस्थाश्रमको निः त्यही धारण करै जो दुर्बल इन्द्रिय वालोंसे धारण नहीं हो सकता ७९ ऋषि पितर देवता अतिथि ये

स संधार्य्यः प्रयत्नेन स्वर्गम
क्षय मिच्छता सुखं चेहेच्छ
ता नित्यं यो धार्य्यो दुर्बले
न्द्रियैः ७९ ऋषयः पितरो
देवा भूतान्य तिथय स्तथा
आशासते कुटुम्बिभ्य स्तेभ्यः
कार्य्यं विजानता ८० स्वाध्या
ये नार्चये तर्षीन् होमै र्देवा
न्यथाविधि पितॄन् श्राद्धैश्च
न्नन्नैर्भूतानि बलिकर्म्मना
८१

सब गृहस्थोंसे भोजनकी आशा करते हैं इस लि ये इन सबोंको अन्न और जल देना चाहिए ८० वे द पढना होम करना श्राद्ध करना अन्नदेना बलि कर्म्मकरना इन सभोंसे ऋषि देवता पितर मनुष्य भूत इन सबोंको क्रमसे विधि सहित पूजा करना ८१

म॰
स्म॰टी॰
भा॰
४८

पितरोंके प्रीतिकरताहुआ अन्न जल दूध मूल फ ल इन सभोंसे दिन दिनमें पार्वण श्राद्धकरे ८२ पं च महा यज्ञके मध्यमें पितरोंके निमित्त बलि कर्म जो कहाहै सो न बन पड़े तो एकको अथवा बहु

कुर्य्यादहरहः श्राद्ध मन्नादे
नोदकेन वा पयो मूल फ॰
लै र्वापि पितृभ्यः प्रीतिमा॰
वहन्‌ ८२ एक मप्याशये
द्विप्रं पित्रर्थे पांच यज्ञिके
नचैवात्राशये त्किञ्चि द्वैश्व
देवं प्रति द्विजम्‌ ८३ वैश्वदे
वस्य सिद्धस्य गृह्येऽग्नौ विधि॰
पूर्वकम्‌ आभ्यः कुर्य्या द्देव॰
ताभ्यो ब्राह्मणो होम मन्वहं
८४ ॥

न ब्राह्मणको भोजन कराये परन्त वैश्वदेवके निमित्त ब्राह्मण भोजन न कराये ८३ संस्कार सहि त आवसथ्य नामकी अग्निमें जो आगे देवता कहैहै सो उनको दिन दिनमें विधिसहित आहुति देवै ८४

अग्निसोम अग्निहोम वैश्वदेव धन्वन्तरि ८५ कुहू
अनुमति प्रजापति द्यावा पृथिवी स्विष्टकृत् इन
सबको आहुति देवे ८६ अच्छे प्रकारसे होम ॥

ओं कुह्वै चैवानुमत्यै च प्रजाप
तय एव च सह द्यावा पृथि
व्योश्च तथा स्विष्टकृते त॥
नः ८६ एवं सम्यग्घविर्हु
त्वा सर्वदिक्षु प्रदक्षिणं इ
न्द्रान्तकाप्पतीन्दुभ्यः सानु
गेभ्यो बलिं हरेत् ८७ अग्नेः
सोमस्य चैवादौ तयोश्चैव
समस्तयोः विश्वेभ्यश्चैव
देवेभ्यो धन्वन्तरय एव च ८५

करके सब दिशाओंमें प्रदक्षिण क्रमसे इंद्र वरुण
यम चंद्र इन सबको और इन्होंके सेवकोंको ॥
बलिदेवे ८७ ॥ ८७ ॥

म. स्म.टी. भा. ९९

९९

द्वार देशमें महत्‌को जलस्थानमें जलको मूसल
ओखरीके स्थानमें वनस्पतिको ८८ वास्तु पुरुषके
[illegible] शिर पाद मध्यमें क्रमसे श्री भद्रकाली बो.

मरुद्भ्य इति तु द्वारि क्षिपेद.
प्स्वद्भ्य इत्यपि वनस्पति इत्ये भ्य
वं मुसली लूखले हरेत् ८
८ उच्छीर्षके श्रियै कुर्या
द्भद्रकाल्यै च पादतः ब्रह्म.
वास्तोष्पतिभ्यांत वास्तु म.
ध्ये बलिं हरेत् ८९ विश्वेभ्य
श्चैव देवेभ्यो बलि माकाश
उत्क्षिपेत् दिवाचरेभ्यो भूते
भ्यो नक्तंचारिभ्य एवच ९०

स्तोष्पति इन सबको देवै ८९ विश्वेदेव दिनमें फि
रनेवाले भूत रात्रिमें फिरनेवाले भूत इन सबको
आकाशमें देवै ९० ॥

वाक्य प्रकाशके पीठमें सर्वात्म भूतिको बलिदेवे बलिदेनेसे जो शेष अन्नहै सो दक्षिण दिशामें पितरोंको देवे ११ कुक्कुर पतित डोम पापरोगी कौआ छोटा कीडा इन सबको थोरे से भूमिमें दे

एष्टवास्तुनि कुर्वीत बलिं सर्वात्मभूतये पितृभ्यो बलिं शेषमन्नं सर्वं तु दक्षिणे हरेत् ११ श्वनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम् वायसानां कृमीणां च शनकैर्निक्षिपेद्भुवि १२ एवं यः सर्वभूतानि ब्राह्मणो नित्यमर्चति स गच्छति परं स्थानं तेजोमूर्तिः पथर्जुना १३ ॥

वे १२ इस रीतिसे जो ब्राह्मण सब जीवोंको नित्यही पूजन करताहै सो तेज रूप होकर कोमल मार्गसे बडे स्थानको जाताहै १३ ॥

म॰ स्मृ॰टी॰ भा॰ ९॰

100

इस प्रकारसे बलि कर्म्म करके गृह भोजनके प॰ हिले अतिथिको भोजन करावे और ब्रह्मचारी भिक्षक को भिक्षादेवे एस विधि पूर्वक गुरुको गो देने सेजो फलहोताहै सोफल भिक्षकको

हुत्वैवन्तद्बलि कर्मैव मातिथि मूर्व माशयेत भिक्षा॰ च भिक्षवे दद्या द्विधिव द्ब्रह्मचारिणे एस यत्पुण्य फ॰ लमाप्नोति भिक्षान्दत्वा द्विजो गृही तत्पुण्यफलमाप्नोति गां दत्वा विधिवद्गुरो ९५ भिक्षा मप्युदपात्रम्वा सत्कृत्यविधिपूर्वकम् वेद तत्वार्थ विदुषे ब्राह्मणा योपपादयेत ९६ ॥

भिक्षादेनेसे गृहस्थाश्रमी पाताहै ९५ वेदका सि॰ द्धान्त ग्रंथका जाननें वाला ब्राह्मणको आदरसे विधि पूर्वक भिक्षाको अथवा जलको देवे ९६ ॥

भस्म सदृश ब्राह्मणमें अर्थात् मूर्ख ब्राह्मणमें
देवता और पितरके निमित्त जो वस्तु मोहसे दा
ता लोग देतेहैं सो सब नष्ट होजाताहै ९७ विद्या
तप करके युक्त जो ब्राह्मण उसको सुवर्णरूपी अ

नश्यंति हव्य कव्यानि नरा
णामविजानताम् भस्मी भूं
तेषु विप्रेषु मोहाद्दत्तानि ।
दातृभिः ९७ विद्या तपः स
मृद्धेषु हुते विप्र मुखाग्नि
षु निस्तारयति दुर्गाच्च मं
हत श्चैव किल्बिषात् ९८
सम्प्राप्ता यात्व तिथये प्रद
द्या दासनोदके अन्नं चैव
यथाशक्ति सत्कृत्य विधि
पूर्वकम् ९९ ॥

ग्निमें जो होम किया जाताहै सो बडे पापसे होम
करने वालेको छुडाताहै ९८ आपसे जो अतिथि
आया उसको आदरसे विधिपूर्वक यथाशक्ति आ
सन अन्न जल इन सबको मनुष्य देवे ९९ ॥

म. स्मृ.टी. भा. १२

101

वे अनर्चित ब्राह्मण अतिथि गृहमें वासकरे तो गृहवाला
बड़ा तेजस्वीभीहो और शिल उंछसे जीवन करताहो पं
चाग्निको सेवन करताहो तोभी उसके सुकृतकोवह
लेताहै शिल उंछ पंचाग्नि उसका अर्थ लिखतेहैं के
खेतीकरनेवाले खेतका अन्न काटके लेजातेहैं उसमें
जोबालि गिरी रहतेहैं वह शिल कहाताहै और बालि

शलानप्युञ्छतो नित्यं पंचा
ग्नीनपि जुह्वतः सर्वं सुकृत
मादत्ते ब्राह्मणो नर्चितो वस
न् १०० तृणानि भूमि रुदकं
वाक् चतुर्थी च सूनृता ए
तान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यं
ते कदाचन १०१ एकरात्रं तु
निवसन्नतिथि र्ब्राह्मणः स्मृ
तः अनित्यं हि स्थितो यस्मा
त्तस्मा दतिथि रुच्यते १०२॥

यों सायंकालको लोग अन्नकी ढेरीको स्थानपर
जो अन्न गिरा रहताहै वह उंछ कहताहै ऐसा आव
स्थ्य सभ्य यह पंचाग्नि कहाताहै १०० तृण भूमि जं
ल मीठी वाणी इन वस्तुओं से सज्जनोंका गृह कभी
शून्य नहीं रहता १०१ एक रात्रि निवास करनेसे
अतिथि कहाताहै उसका रहना नित्यही नहींहै
इसलिये अतिथि कहाताहै १०२ ॥

भार्या अग्नि इन दोनोंसे एक जो गृहस्थहै उसके घ
रमें वैश्वदेवके समयमे आयाहो जो एक गांवका
रहने वाला और चित्र हंसको कथा आदिसे संगति
करके आने वाला अतिथिनहीं कहलाताहै एवं बुद्धि
रहित जो गृहस्थ पर पाककी उपासना करतेहै उस

नैकग्रामीणमतिथिं विप्रं सा
ङ्गतिकं तथा उपस्थितं गृहे
विद्या द्भार्य्या यत्राग्नयो पिवा
एवं उपासते यो गृहस्थाः पर
पाक मवुद्धयः तेन ते प्रेत्य
पशुतो ब्रजेन्त्यन्नादि दायिना
म् ४४ अप्रणोद्यो तिथिः सा
ये सूर्योढो गृहमेधिना का
ले प्राप्तस्त्व काले वा न स्या
मस्नन् गृहे वसन् ४५ ॥

करतेहैं
के परलोकमें अन्न देने वालेका पशु होतेहै ४४
सूर्यके अस्त समयमें अतिथि आयाहो तो उसको
भोजन जल अवश्य देना कालमें प्राप्तहो अथवा
दूसरे कालमें प्राप्तहो परंतु भोजन किए विना घ
रमें वासन करने पावे ४५ ॥

जो वस्तु अतिथिको भोजन नकरावे उस वस्तुको
उस वस्तुको आप भोजन न करे और अतिथिको भो
जनदेना यह जो धन यश आयुष स्वर्ग इन्होंका
हितकरनेवालाहै १०६ आसन रहने शय्या पीछे चल
ना सेवा इन सबको उत्तम मध्यम हीन पुरुषमें क

नैवं स्वयं तदश्नीयाद तिथिं
यन्नभोजयेत् धन्यं यशस्य
मायुष्यं स्वर्ग्यं वातिथिपूजनं
१०६ आसनावसथौ शय्या म
नुव्रज्या उपासनाम् उत्तमे
षूत्तमं कुर्या हीने हीनं सः
मे समम् १०७ वैश्वदेवे तु निर्वृ
त्ते यद्यन्यो तिथि राव्रजेत् त
स्याप्यन्नं यथाशक्ति प्रदद्यान्न
बलिं हरेत् १०८ ॥

ममें उत्तम मध्यम हीन करना १०७ वैश्वदेव कर्म
करनेके पीछे दूसरा अतिथि आवे तो उसको य
थाशक्ति अन्नदेवे बलि कर्म
न करे
१०८

भोजनके लिये ब्राह्मण अपना कुल और गोत्रको
नकहे कदाचित् कहेगे उगली वस्तुका भोजन
करनेवाला कहाताहै इस बातको पंडितोनें कहाहै
।९। ब्राह्मणके गृहमें क्षत्रिय वैश्य शूद्र मित्र जाति
अर्थात् अपना कुल गुरु ये सब अतिथि नही कहा

नभोजनार्थं स्वे विप्रः कुलगो
त्रे निवेदयेत् भोजनार्हि ते
शंसन् वांताशी त्युच्यते बु
धैः ।९। न ब्राह्मणस्य त्वति
थि गृहे राजन्य उच्यते वैश्य
शूद्रौ सखा चैव ज्ञातयो गु
रु रेव च ।१०। यदि त्वतिथि
धर्म्मेण क्षत्रियो गृह माव्र
जेत् भुक्तवत्सु च विप्रेषु
कामं तमपि भोजयेत् ।११।

ते क्यों कि क्षत्रिय आदि तीन वर्ण ब्राह्मणसे नीच
हैं और मित्र कुल इसमें अपना संबंधहै और गुरुतो
अपना प्रभुहै इसलिये जो अपनेसे बडा हो और
संबंधमें प्रभुतासे भिन्नहो सो अतिथि सब वर्णोंमें
कहाताहै जब अतिथिके धर्मसे ब्राह्मणके गृहमें

म॰
स्सं॰टी॰
भा॰
१०३

क्षत्रिय आवे तो ब्राह्मणके पीछे उसको भी भोजनदेना ।३। इस रीतिसे दयाकरके वैश्य शूद्रकोभी सेवकों के साथ भोजन देना ।२। प्रीति सहित मित्र आदि घरमें आय हो तो सत्कार सहित यथाशक्ति स्त्रियों

103

वैश्य शूद्रा वपि प्राप्तौ कुटुंबे तिथि धर्मिणो भोजयेत् सह भृत्यैस्तो वा नृशंस्यं प्रयोजयेत् ।२। इतरानपि सख्यादीन् संप्रीत्या गृहमागतान् सत्कृत्यान्नं यथाशक्ति भोजये त्सहभार्यया ।३। सुवासिनीः कुमारीश्च रोगिणी गर्भिणीः स्त्रियः अतिथिभ्योऽग्र एवैतान् भोजयेद विचारयन् ।४।

के भोजन समयमें इन्होंको भोजन देना ।३। पतोहु विवाही लड़की छोटा लड़का रोगी गर्भिणी इन सबोंके अतिथि भोजनकी पहिले भोजनदेना इसमें विचार न करना ।४। ॥

भोजनके योग्य जितने कहे आपहे उन सबको
भोजन कराए विना बुद्धि हीनजो पुरुष आप
भोजन करताहै सो यह नही जानताहै कि ह
मारी शरीरको कुक्कर और गिद्ध भोजन करैंगे ११॥
ब्राह्मण और संबंधी भृत्य इन सबको भोजन करा

अदत्वा तु य एतेभ्यः पूर्वं ।
भुंक्ते विचक्षणः सभुंजानो
न जानाति श्वगृध्रै र्जग्धि ।
मात्मनः ११॥ भुक्तवत्स्वथ
विप्रेषु स्वेषु भृत्येषु चैवहि
भुंजीयातां ततः पश्चा दव
शिष्टं तु दंपती ११६ देवान्
ऋषीन् मनुष्यांश्च पितॄन् गृ
ह्याश्च देवताः पूजयित्वा त
तः पश्चाद्गृहस्थः शेषभुग् भ
वेत् ११७ स्त्रामी आपनी स्त्री

के जो बचे उसको गृ
सहित भोजन करे ११६ देवता ऋषि पितर मनुष्य
भूत इन सभोंके निमित्त जो यज्ञहै उसको करके
और इन सभोंको भोजन कराके जो बचे उसको गृ
हस्थ भोजन करे ११७ ॥

केवल अपने हीके लिये जो मनुष्य पाक करता है सो पापको भोजन करता है यज्ञका शेष जो अन्न है सो भले लोगोंके उचित है ११८ राजा और यज्ञ करने वाला विद्या और व्रत इन दोनोंसे पक्का जो ब्रह्मचारी गुरु प्रिय श्वशुर मामा इन सभोंका प्रतिवर्ष

अघं स केवलं भुंक्ते यः पचत्या
त्म कारणात् यज्ञशिष्टाशनं
ह्येतत् सतामन्नं विधीयते ११८
राजर्त्विक् स्नातक गुरून् प्रि
य श्वशुर मातुलान् अर्हयेन्म
धुपर्केण परिसंवत्सरात् पुनः
११९ राजा च श्रोत्रियश्चैव यज्ञ
कर्मण्युपस्थितौ मधुपर्केण
संपूज्यौ नत्वयज्ञ इति स्थितिः
१२० ॥

में मधुपर्कसे पूजा करना ११९ राजा और वेदपढ़नेवाला इन दोनोंकी पूजा मधुपर्कसे यज्ञकर्ममें करना दूसरे समयमें नही यह शास्त्रकी मर्यादा है १२० ॥

सायंकालमें जो सिद्ध अन्नहै उससे मंत्र रहित ब
लि कर्मको पत्नीकरै यह पंच महायज्ञ गृहस्थो
के लियेहैं ॥१॥ प्रतिमासके अमावस्यामें पितृय
ज्ञ करके अग्निहोत्री ब्राह्मण श्राद्धकरै ॥२॥ प्रति

सायं त्वन्नस्य सिद्धस्य पत्न्य
मंत्र बलिं हरेत् वैश्वदेव हि
नामैतत् सायं प्रातर्विधी
यते ॥१॥ पितृयज्ञं तु निर्व
र्त्य विप्रश्चेन्दुक्षयेऽग्निमान्
पिंडान्वाहार्यकं श्राद्धं कु
र्यान्मासानुमासिकं ॥२॥
पितृणां मासिकं श्राद्धम
न्वाहार्यं विदुर्बुधाः तच्चा
मिषेण कर्तव्यं प्रशस्तेन
समन्ततः ॥३॥

मासमें पितरोंके श्राद्धको अन्वाहार्य कहतेहैं
उस श्राद्धको शुद्ध मासमें करना चाहिए प्रशस्त
कलि मांससे परंतु मास करके श्राद्ध करना कलि
युगमें मनाहै ॥३॥

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
१२५

इस श्राद्धमें जो भोजनकरानेके योग्यहै और जो यो
ग्य नहीहै और जितने चाहिए और जैसे अन्नकरके
भोजन करना चाहिए सो सब कहेंगे १२४ श्राद्धमें
दो कर्म्महै एक पितृकर्म्म दूसरा देवकर्म्म तिस॰
में कैसाभी धनीहो तो देवकर्म्ममें एकको और पि॰

105

तत्रये भोजनीयाः स्यु येचव
र्ज्या द्विजोत्तमाः यावन्त श्चैव
यै श्चान्नै स्तान्प्रवक्ष्याम्य शेष
तः १२४ द्वौ दैवे पितृ कार्ये
त्री नेकैक मुभयत्र वा भो॰
जयेत्सु समृद्धोपि न प्रसज्जे
त विस्तरे १२५ सत्क्रियां देश
कालौच शौच ब्राह्मण स
म्पदः पंचैतान्विस्तरोहंति
तस्मान्नेहेत विस्तरं १२६ ॥

तृ कर्म्ममें दोको भोजन करावे अथवा दोनों क
र्म्ममें एक एकको भोजन करावे बहुत विस्तारमें
प्रसक्त न होवे सत्कार देश काल पवित्रता और
ब्राह्मण इन सबोंका नाश विस्तार करनाहै इस
लिये विस्तार नो करना १२६ ॥

अमावस्यामें श्राद्ध करने से पितरोंका उपकार
होताहै इससे पितर लोग श्राद्ध करनेवाले को
गुणवान पुत्र पौत्र धन आदि सब वस्तुको देते
है इसलिये श्राद्धको अवश्य करना चाहिए १२७
देवता और पितरोंकी देने योग्यहै जो वस्तुहै सो

प्रथिता प्रेत कालेषा पित्र्य
नामविधु क्षये तस्मि न्युक्त
स्यैति नित्यं प्रेत कालेव लौ
किकी १२७ श्रोत्रिया यैव
देयानि हव्य कव्यानि दातृ
भिः अर्हत्तमाय विप्राय त
स्मै दत्तं महाफलम् १२८
एकैक मपि विद्वांसं दैवे पि
त्र्ये च भोजयेत् पुष्कलं फ
ल माप्नोति नामंत्रज्ञा न्बहू
नपि १२९ जो ब्राह्मणहै इसी
वेदपाठी बड़ा सुपात्र
को देना चाहिए इसके देनेसे महाफल होताहै
और बहुत मूर्ख ब्राह्मणके भोजन करानेसे वैसा
फल नही होताहै देव पितर कर्ममें एकभी पंडि
त ब्राह्मणके भोजन करानेसे बड़ाफल होताहै १२९

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
१॰९

106

इससे वेद पढने वाले ब्राह्मणके परीक्षा करना दे
वता और पितरोंकी वस्तुका ग्रहण करने वाला
वहीहै १३० दश लाख सर्व ब्राह्मणके भोजन क
रानेसे जो फल होताहै सो मंत्रजानने वाला एक
ब्राह्मणके भोजन करानेसे होताहै १३१ ज्ञानी ब्रा

दूरादेव परीक्षेत ब्राह्मणं वेद
पारगम् तीर्थं तद्धव्य कव्या॰
नां प्रदाने सो तिथि स्मृतः १३०
सहस्रं हि सहस्राणा मनृचां
यत्र भुंजते एक स्तान्मंत्र वि
त्प्रीतः सर्वा नर्हति धर्मतः
१३१ ज्ञानोत्कृष्टाय देयानि ॰
कव्यानिच हवींषिच नहि
हस्तावसृग्दिग्धौ रुधिरे णै॰
व शुध्यतः १३२ ॥

ह्मणको हव्य और कव्य अर्थात् देवता और पितरों
के देनीके वस्तु को देना क्यों कि रुधिरसे लिप्त ह
स्त रुधिर करके धोनेसे नहीं छूटता १३२ ॥

देवता और पितरोंके ग्रन्नको जे ग्रास मूर्ख ब्राह्म
ण भोजन करताहै ते वार श्राद्ध करने वाला प्र
ग्निसे तप्त सूल और हृष्टि अर्थात् दोधारा शस्त्र
और लोह पिंड इन सबको भोजन करताहै १३४ चा
र प्रकारके ब्राह्मणहैं ज्ञानी तपस्वी वेदपाठी क

यावतो ग्रसते ग्रासान् हव्य
कव्येषु मंत्रवित् तावतो ग्र
सते प्रेत्य दीप्त शूलर्ष्ट्ययो
गुडान् १३४ ज्ञाननिष्ठा द्विजाः
केचित् तपो निष्ठा स्तथापरे
तपः स्वाध्याय निष्ठाश्च क
र्मनिष्ठा स्तथापरे १३५ ज्ञा
ननिष्ठेषु कव्यानि प्रतिष्ठा
प्यानि यत्नतः हव्यानि तु
यथान्यायं सर्वेष्वेव चतु
र्ष्वपि १३५ ॥ ॥

र्मकाण्डी १३४ पितरोंके देने योग्य वस्तुओंको
ज्ञानी ब्राह्मणको देना और देवतोंकी देने योग्य
वस्तुओंको यथा न्याय अर्थात् पहिला न मिले
तो दूसरा चारोंको देना १३५ ॥

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
१३

जिसका मूर्ख पिता हो और आप वेदपाठी हो अ
थवा वेदपाठी पिता हो और पुत्र इसका मूर्ख हो
१३६ इन दोनोंमे जिसका पिता वेदपाठी है सो ब
डा है और दूसराभी वेदके पढ़नेसे सत्कार योग्य है

(67)

अश्रोत्रियः पिता यस्य पुत्रः
स्याद्वेदपारगः अश्रोत्रियो
वा पुत्रः स्यात् पिता स्याद्वे
दपारगः १३६ ज्यायांसमन
यो र्विद्याद्यस्य स्याच्छ्रोत्रि
यः पिता मंत्रसंपूजनार्थं
तु सत्कारमितरोऽर्हति १३७
न श्राद्धे भोजयेन्मित्रं धनैः
कार्योऽस्य संग्रहः नारिं न
मित्रं यं विद्यात्तं श्राद्धे भो॰
जयेद्द्विजम् १३८ ॥

१३ श्राद्धमे मित्रको भोजन कराना धन देके मैत्री
कराना शत्रुतासे मित्रतासे रहित जो ब्राह्मण है
उसको भोजनमे करानेका फल परलोकमे न
हीं होता ॥

जिसमनुष्यके देव पितृ संबंधी कार्यमें मित्रही प्र
धानहै अर्थात् मित्रता से रहित जो ब्राह्मणहै उस
को भोजन करानेका फल परलोकमें नही होता
१३९ जो मनुष्य श्राद्धमें भोजनहीके निमित्त मित्र॰
ता करताहै सो स्वर्गलोकसे भ्रष्ट होताहै और वह॰

यस्य मित्र प्रधानानि श्राद्धा
नि च हवींषि च तस्य प्रीति
फले नास्ति श्राद्धेषु च हवि
षु च १३९ यः संगतानि कु
रुते मोहा च्छ्राद्धेन मानवः
सस्वर्गा च्च्यवते लोका च्छ्रा॰
द्ध मित्रो द्विजाधमः १४० स
म्भोजनी साभिहिता पैशा॰
ची दक्षिणा द्विजैः इहैवा॰
स्ते तु सा लोके गौरन्धेवैक
वेश्मनि १४१ है १४० ऐसा

ब्राह्मणोंमे अधम
भोजन पिशाचोंकाहै इसी लोकमें फलदायकहै
सब मनुष्य जानेंगे कि इत भोजन करायाहै जि
स प्रकारसे अंधी गौ एकही गृहमें रह सकतीहैं
जिसप्रकारसे वह भोजन इसी लोकमें रहताहै पर

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
१॰८

108

लोकमें काम नहीं आता ५५। जिस प्रकारसे ऊसर भूमिमें बीज बोनेसे बोने वाला फलको नहीं पाता तिसी प्रकारसे मूर्ख ब्राह्मणोंकी देवताको वस्तुको भोजन करानेसे दाता फलको नहीं पासकताहै ५२ पण्डित ब्राह्मणको विधिपूर्वक दक्षिणादेनेसे दाता और प्रतिगृहीता ये दोनो फलको पातेहैं इस

यथेरिणे बीजमुप्त्वा नवप्ता लभते फलम् तथान्टचे हविर्दत्वा न दाता लभते फलं ५२ दातृन् प्रतिगृहीतॄंश्च कुरुते फलभागिनः विदुषे दक्षिणान्दत्वा विधिवत्प्रेत्य चेह च ५३ कामं श्राद्धेर्चयेन्मित्रं नाभिरूपमपि त्वरिम् द्विषताहि हविर्भुक्तं भवति प्रेत्य निष्फलम् ५४ ॥

लोकमें और परलोकमें भी ५३ श्राद्धमें मित्रको भोजन करावे तो चिंता नहीं परंतु शत्रु जब पण्डित भीहो तो उसको भोजन नहीं करना क्यों कि उसको भोजन करानेसे परलोकमें भोजन कराने के फलको दाता नहीं पाताहै ५४ ॥

वेदके दो भागहै एक मंत्र भागहै दूसरा ब्राह्मण
भागहै ऋग्वेदके दोनो भागको पढे हो अथवा
यजुर्वेदके दोनों भागके पढेहो तो ब्राह्मणको य
त्नपूर्वक श्राद्धमें भोजन करावे अथवा संपूर्ण ए॰
क शाखापढेहो तो उसकोभी श्राद्धमें भोजन करा॰

यत्नेन भोजयेच्छ्राद्धे बहृ॰
चं वेदपारगं शाखान्तक म॰
थाध्वर्युं छन्दोगन्तु समाप्ति
कम् १४५ एषा मन्यतमो य
स्य भुंजीत श्राद्ध मर्चितः पि
तॄणां तस्य तृप्तिः स्याच्छा॰
श्वती साप्त पौरुषी १४६ एष
वै प्रथमः कल्पः प्रदाने ह॰
व्य कव्ययोः अनुकल्प स्त्वयं
ज्ञेयः सदा सद्भि रनुष्ठितः १४७

वे १४५ इन वेद पढायोंमें से एककोभी पूजा करके
श्राद्धमें भोजन करावे तो सात पुरुषतक पितरोंके
तृप्तिहोतीहै १४६ हव्य और कव्य इन दोनोके दान
में प्रथम पक्षकहा अब भले लोगोंने जिसका सी॰
कार कियाहै ऐसा जो गौण पक्षहै उसको जानो १४७

॥

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
२॰४

नाना मामा भैने श्वशुर विद्या गुरु दोहित्र अर्थात्
लड़की का बेटा दामाद मौसीका पुत्र आदि और
ऋत्विक अर्थात् यज्ञ करनेवाला यजमान इन द
शोंको भोजन कराना शुभ्रे पक्षके प्रभावमें ।१४८।
देव कर्म्ममें ब्राह्मणको परीक्षा नहीं करना और पि

मातामहं मातुलं च स्वस्त्रीयं
श्वशुरं गुरुम् दौहित्रं विट्पतिं
बंधुं ऋत्विग्याज्यौ च भोजये
त् ।१४८। न ब्राह्मणं परीक्षेत
दैवे कर्म्मणि धर्म्मवित् पित्र्ये
कर्म्मणि तु प्राप्ते परीक्षेत प्र
यत्नतः ।१४९। ये स्तेन पतित
क्लीबा येच नास्तिक वृत्तयः
तान् हव्य कव्ययो विप्रा नन
र्हां न्मनु रब्रवीत् ।१५०। ॥

त्र्यकर्म्ममें तो यत्नसे ब्राह्मणका परीक्षा करना ।१४९।
श्राद्धमें भोजन करानेके अयोग्य जो ब्राह्मण मनुजी
ने कहेहैं सोयेहैं चोर महापातकी नपुंसक ना
स्तिक
।१५०।

ब्रह्मचारी मद्य इष्ट धर्मवाला जुआ खेलने बहु नको यज्ञकराने वाल ॥५१॥ वैद्य मज्जूरी लेके नौ॰ न वर्ष तक देवतोंकी मूर्तिका पूजन करने वा ला मांस बेचनेवाला वनियोंके कर्मसे जीनवाला

जटिलं चानधीयानं दुर्बलं कितवं तथा याजयन्ति च ये पूगांस्तांश्च श्राद्धे न भोज येत् ॥५१॥ चिकित्सकान्देव लकान् मांसविक्रयिणस्त था विपणेन च जीवन्तो व र्ज्याः स्युर्हव्यकव्ययोः प्रेष्यो ग्रामस्य राज्ञश्च कुनखी श्या वदन्तकः प्रतिरोद्धा गुरोश्चै व त्यक्ताग्निर्वार्धुषिस्तथा ॥५२॥

५२ मज्जूरी लेके ग्राम वासियोंका अथवा राजाका आज्ञा करनेवाला निकाम नखवाला जन्मसे का लादांत वाला गुरुका विरुद्ध कर्म करने वाला अ ग्निकार रहत संते अग्निहोत्रका त्यागकरनेवाला ॰ व्याजसे जीनेवाला अर्थात् ऋणादिके वृद्धि ग्रहण

म॰ स्मृ॰ टी॰ भा॰ ११॰

110

करके जीनेवाला १५३ क्षय रोग वाला पशुके पा
लनसे जीनेवाला परिवेत्ता अर्थात् अविवाहित जे
ठा भाईके रहते हुए विवाह करने वाला छोटा भा
ई पंच महायज्ञको नही करने वाला ब्राह्मणोंसे ।
शत्रुता करानेवाला परिवित्तिः अर्थात् विवाहित
कनिष्ट भाईका अविवाहित ज्येष्ठ भाई गणाभ्यंत
र अर्थात् सब जीवको वासके लिये जो बडे लो॰

यक्ष्मीच पशुपालश्च परिवे
त्ता निराकृतिः ब्रह्मद्विट् प
रिवित्तिश्च गणाभ्यंतर एव॰
च १५४ कुशीलवोवकीर्णी
च वृषली पतिरेवच पौनर्भ
वश्च काणश्च यस्य चोप प॰
तिर्गृहे १५५ ॥

गों न मठ आदि बनाया अथवा सब जीवोंके नि
मित्त धन दिया उससे जीने वाला १५४ नाचसे जी
ने वाला स्त्री संभोगसे भ्रष्ट ब्रह्मचारी शूद्रा स्त्रीका
पति प्रथम पतिको छोडके दूसरा पति करने वा
ली स्त्रीका पुत्र काणा और जिसके गृहमें उपपति
अर्थात् दूसरा पति है वह भी १५५ ॥

मजूरी लेके पढाने वाला मजूरी देके पढने वाला
शूद्रका शिष्य शूद्रका गुरु कठोर बोलने वाला पति
तके पढाने वाला कुण्ड अर्थात् पतिके जीतेहुए
दूसरे पतिसे उत्पन्न गोलक अर्थात् पतिके मुए हु
ए दूसरे पतिसे उत्पन्न १५६ कारण विना माता पि
ता गुरुका त्याग करने वाला पतितसे पढने वाला

भृतका ध्यापको यश्च भृतका
ध्यापित स्तथा शूद्रशिष्यो गु
रुश्चैव वाग्दुष्टः कुंडगोलकौ
१५६ अकारण परित्यक्ता मा
ता पित्रो गुरो स्तथा ब्राह्मै
र्यौनैश्च संबंधैः संयोगं पति
तैर्गतः १५७ अगार दाही ग
रदः कुंडाशी सोम विक्रयी
समुद्र यायी बंधीच तैलिकः
कूट कारकः १५८ ॥

पतितके पढाने वाला पतितसे विवाह आदि संबं
ध करने वाला १५७ गृहमें अग्नि लगाने वाला वि
षका देने वाला कुंडके अन्नको भोजन करनेवाला
सोमलताका बेचनेवाला समुद्रमें जानेवाला बंदी
अर्थात् स्तुति पढनेवाला तिलके निमित्त तेल आ
दि बीजका पीसनेवाला मिथ्यावाद करने वाला
१५८

म॰
स्र॰ टी॰
भा॰
१११

पितासे विवाद करने वाला आप पासा खेलनी न
ही जानता और अपने अर्थ दूसरे को पासा खेलाने
वाला सुराको छोड़कर मद्य पीने वाला कुष्टी अभि
शस्त अर्थात् पापके निर्णय बिना पापी कहाने वा
ला बहानेसे धर्मकरनेवाला रस अर्थात् मधुर आ॰
मिल कडुआ लवन कषाय तीन इन्होंका बेचने वा॰

पित्रा विवाद मानश्च कित
वो मद्यप स्तथा पापरोगय॰
भिशस्तश्च दांभिको रस वि
क्रयी ॥१५॥ धनुश्शराणां॰
कर्ताच यश्चाग्रे दिधिषूपतिः
मित्रध्रुक् द्यूतवृत्तिश्च पुत्रा
चार्य स्तथैवच ॥१६॥ भ्रामरी
गण्डमाली च श्वित्र्यथो पि
शुनस्तथा उन्मत्तोंधश्च व॰
र्ज्याः स्यु र्वेदनिंदक एवच ॥१७॥

ला ॥१५॥ बाण धनुषका करनेवाला अग्रे दिधिषूप
ति अर्थात् जेठी सगी भगिनीके विवाह बिना छो
टीसे विवाह करने मित्रसे द्रोह करनेवाला जूआ॰
से जीनेवाला पुत्रसे पढने वाला ॥१६॥ भिरगी गण्ड
माला सफेद कुष्ट इन रोगोंमेंसे कोई एक रोग वाला
दुर्जन उन्मत्त अंधा वेदका निंदा करने वाला ॥१७॥

हाथी बयल घोड़ा ऊंठ इन सबोंके वीर्यका नाश करनेवाला अर्थात् वधिया करनेवाला ज्योतिष विद्यासे जीनेवाला पक्षी पालने वाला संग्रामके लिये शास्त्र विद्याका उपदेश करने वाला ।६२ बंधे जलको दूसरे स्थानमें लेजाने वाला वहते जल॰ को रोकिने वाला गृह बनानेकी विद्यासे जीनेवाला

हस्ति गो ऽश्वोष्ट्र दमको नक्ष
त्रै र्यश्च जीवति पक्षिणां पो॰
षको यश्च युद्धाचार्य स्तथै॰
व च ।६२ स्रोतसां भेदको य
श्च तेषां चावरणे रतः गृह
संवेशको दूतो वृक्षारोपक
एव च ।६३ श्वक्रीडी श्येन जी
वी च कन्या दूषक एव च हिं
स्रो वृषल वृत्तिश्च गणानां
चैव याजकः ।६४ ॥

दूत अर्थात् संदेशा लेजानेवाला मजूरी लेके दूत लगाने वाला ।६३ कुत्तोंसे क्रीडाकरनेवाला बाज पक्षमें जीनेवाला कन्या अर्थात् विवाह जिसका नहीं हुआ का गमन करनेवाला हिंसा करने वाला शूद्रोंसे जीने वाला बहुत मनुष्योंके यज्ञ क॰ ॥
राने वाला ।६४ ॥

आचारहीन नपुंसक नित्यही मांगनेवाला खेती॰
से जीनेवाला श्लीपदी अर्थात् मोटा पांववाला भ
ले लोगोंसे निंदाको पानेवाला १६५ भेड भैंसि इस
से जीनेवाला विवाहित पतिको छोड कर दूसरे
पुरुषसे विवाह करनेवाली जो स्त्री उसका दूसरा

आचारहीनः क्लीवश्च नित्यं
याचनकस्तथा कृषि जीवी
श्लीपदी च सद्भि र्निन्दित ए
वच १६५ औरभ्रिको माहि॰
षिकः परपूर्वा पति स्तथा
प्रेत निर्यातक श्चैव वर्जनी
या प्रयत्नतः १६६ एतान्विग
र्हिता चारा नपांक्तेयान् द्वि
जाधमान् द्विजाति प्रवरो
विद्वान् उभयत्र विवर्जयेत्
१६७

पति मजूरी लेके शुप रूप मनुष्यको दाह करने
वाला १६६ ये सब निन्दित आचार वालेहै और ब्रा
ह्मणोंमें अधमहै पंगतिमे बैठानेके योग्य नहीहै
इन सभोंका देव पितर कर्ममें वर्जन करे जो पंडि
त ब्राह्मण श्रेष्ठहै सो १६७ ॥

जैसी तृणकी अग्नि झट पट शांत हो जाती है तै
साही मूर्ख ब्राह्मण है इस लिये हव्य और कव्य
उसको न देना राखमें होम नहीं होता है १६८
जो निंदित ब्राह्मण कहे हैं उन्होंके हव्य कव्य दे
नेसे परलोकमें जो फल होता है उस संपूर्ण ॰

ब्राह्मणस्त्व नधीयान स्तृणा
ग्नि रिव शाम्यति तस्मै हव्यं
न दातव्यं न हि भस्मनि हू॰
यते १६८ अपांक्त दाने यो
दातु र्भवत्यूर्द्धं फलोदयः
दैवे हविषि पित्र्ये वा तत्प्र॰
वक्ष्याम्य शेषतः १६९ अव्र
तै र्यद्द्विजै र्भुक्तं परिवित्र्या दि
भि स्तथा अपांक्तेयै र्यदन्यै
श्च तद्वै रक्षांसि भुंजते १७०

फलको हम अर्थात् भृगुजी कहेंगे १६९ पूर्वक
थित निंदित ब्राह्मण जो भोजन करते हैं सो रा
क्षस भोजन करते हैं अर्थात् फल रहित होता॰
है १७० ॥

म॰ स्मृ॰ टी॰ भा॰ ११३

113

अविवाहित सहोदर जेठाभाईके रहते हुए छोटा भाई विवाहकरे और अग्निहोत्रकरे तो जेठाभाई परिवित्ति कहाताहै और छोटाभाई परिवेत्ता कहाताहै १७१ परिवित्ति परिवेत्ता परिविन्ना अर्थात् जिस कन्यासे विवाह हुआहै सो और उस कन्याको दे-

दाराग्निहोत्र संयोगं कुरुते
योग्रजे स्थिते परिवेत्ता स वि-
ज्ञेयः परिवित्तिस्तु पूर्वजः
१७१ परिवित्तिः परीवेत्ता यया
च परिविद्यते सर्वे ते नरकं
यान्ति दातृ याजक पंचमाः
१७२ भ्रातु र्मृतस्य भार्यायां
योनुरज्येत कामतः धर्मे-
णापि नियुक्तायां स ज्ञेयो
दिधिषूपतिः १७३ ॥

ने वाला विवाह करने वाला ब्राह्मण ये पांचो नरकमें जाताहैं १७२ मरे हुए भाईकी स्त्रीमें जो अनुराग से गमन करनेकी विधि कहेंगे उस विधिसे भी अपने इच्छासे गमन करने वाला दिधिषूपति कहाताहै १७३ ॥ ॥

परस्त्री में दो पुत्र होतेहैं एक कुंड दूसरा गोलक ति
समें जीवति पति वालीमें कुंड कहाताहै मृतपति
वाली गोलक कहाताहै १७४ इन दोनोंके देव पि
तर कर्ममें भोजन कराने से दान देनेसे परलोक
में दाताको फलनहीं होता १७५ पंक्तिके योग्य

परदारेषु जायेते द्वौ सुतौ ।
कुण्ड गोलकौ पत्यौ जीवति
कुण्डः स्यात् मृते भर्तरि गो-
लकः १७४ तौ तु जातौ पर
क्षेत्रे प्राणिनौ प्रेत्य चेह च
दत्तानि हव्य कव्यानि नाश
येते प्रदायिनाम् १७५ अपां
क्त्यो यावतः पांक्त्यान् भुंजा
नाननुपश्यति तावतान्न फ
ल मश्नुत दाता प्राप्नोति बालि
शः १७६

जो ब्राह्मण नहींहै सो पंक्तिके योग्य जितने ब्रा-
ह्मण भोजन करते को देखताहै तितनेंका फल-
दाता नहीं पाताहै इस लिये वह दाता बुद्धिरहि
त कहाताहै १७६ ॥

म॰
स्म॰टी॰
भा॰
११४

114

अंधा काणा सपेद कुष्टवाला पापरोगी अर्थात् रा
जरोगवाला इन सबोंके देखने से क्रम करके ९०
६० १०० १००० इतने ब्राह्मण भोजन करानेका फल
नही होताहै भोजन कराने वालेको इसमें यह स
देहहै कि अंधा तो देख नही सकता किस प्रकार
से फलको नाश करेगा तो इसका उत्तर यहहै
कि देखनेके योग्य स्थानमें बैठाहो अर्थात् भोज॰

वीक्ष्यान्धो नवतेः काणः ष
ष्टेः श्वित्री शतस्य च पापरो॰
गी सहस्रस्य दातु र्नाशयते
फलम् १७७ यावतः संस्पृ
शे दंगै ब्राह्मणान् शूद्रया॰
जकः तावतां न भवे द्दातुः
फलं दानस्य पौर्त्तिकं १७८

न करने वाले ब्राह्मणके समीपमें बैठाहो १७७
शूद्रके यज्ञमें यज्ञ करने वाला ब्राह्मण अपने अं
गोंसे जितने ब्राह्मणोंके देनेका फल दाता नही
पाता और श्राद्धमें भी अच्छे ब्राह्मणोंके पंक्तिमें
शूद्रके यज्ञ करानेवाला ब्राह्मण बैठके भोजन
करे तो जितने ब्राह्मण भोजन करतेहैं उन सभों
के भोजन करानेके फलको दाता नही पासकता
१७८

शूद्रके यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणसे लोभ करके
वेद पढने वालेभी ब्राह्मण प्रतिग्रह करे अर्था-
त् दानलेवे तो फट पट नाशको प्राप्त होताहै जै
सी माटीका कच्चा पात्र जलमें १७१ सोमलताके
वेचनें वाले ब्राह्मणको दान देनेसे दाता दूसरे ज
न्ममें विष्ठा भोजन करने वाली योनिमें उत्पन्न हो

वेदवि द्यापि विप्रस्य लोभा
त्कृत्वा प्रतिग्रहम् विनाशं
व्रजति क्षिप्र मामपात्र मि-
वाम्भसि १७१ सोम विक्रयि
णे विष्ठा भिषजे पूय शो-
णितम् नष्टं देवलके दत्त
मप्रतिष्ठं न वार्द्धुषौ १८०॥

ताहै और इसी रीतिसे जीविका के लिये औषध क
रने वाले ब्राह्मणको और ब्याजलेने वाले ब्राह्मण
को दान देनेसे दानका पीव रक्त पीने वाले यो-
निमें दाता उत्पन्न होताहै और मजूरी लेके तीन
वर्षतक देव मूर्तिका पूजा करने वाले ब्राह्मण
को और ब्याज लेने वाले ब्राह्मण को दान देनेसे दा
न का फल नहीं होताहै १८०॥

म० स्मृ०टी भा० ११५

115

वनियांके कर्म से जीनेवाले ब्राह्मणको दानदे-
नेसे इस लोकमें और परलोकमें दानका फल
नहीहोता और प्रथम पतिके छोड़के दूसरा प
ति करनेवाली जो स्त्री है उसमें दूसरे पतिसे उत्प
न्न जो पुत्र सो पौनर्भव कहाताहै उसको दानदेना
कैसाहै जैसे भस्ममें होम करना १८१ जो पंच

यत्तु वाणिजके दत्तं नेहना
मुत्र तद्भवेत् भस्मनीव हु
तं यथा पौनर्भवे द्विजे ८१
इतरेषु त्वपांक्तेषु यथो द्दि-
ष्टेषु साधुषु मेदो सृङ्मांस
मज्जास्थि वदंत्यन्नं मनीषि
णः ८२ अपांक्तेया पहता:
पंक्तिः पाव्यते यै द्विजोत्तमैः
तान्निबोधत कार्त्स्न्येन द्विजा
ग्र्यान् पंक्ति पावनान् ८३

तिमें बैठने योग्य नहीं है उनको दानदेनेसे दूसरे
जन्ममें दाता मेद अर्थात् हृदयका मांस रक्त मांस
मज्जा हाड इसके भोजन करणेवाले योनिमें उत्पन्न
होता है १८२ चोर आदि ब्राह्मणसे दूषित पंक्तिमें
बैठनेसे उस पंक्तिको पवित्र करने हारे जो ब्राह्म
ण उनको सुनिए १८३ ॥

जिस कुलमें दश पुरुषतक वेद और शास्त्र इनका
पढना पढाना चला आयाहै उस कुलमें उत्प
न्नहो और चारोवेद व्याकरण आदि छः अंगको
पढाने वालाहो सो ब्राह्मण पंक्तिको पवित्र क
रनेवालाहै ८४ त्रिणाचिकेत अर्थात् यजुर्वे
वेद भाग और उसकी व्रत यह जिसकोहै और अ॰

अग्र्या सर्वेषु वेदेषु सर्वप्रव
चनेषुच श्रोत्रियान्वयजा॰
श्चैव विज्ञेयाः पंक्तिपावना
८४ त्रिणाचिकेतः पंचाग्नि
स्त्रिसुपर्णः षडंगवित् ब्रह्म॰
देयात्मसन्तानो ज्येष्ठसामग
एवच ८५ वेदार्थवित्प्रव॰
क्ता च ब्रह्मचारी सहस्रदः
शतायुश्चैव विज्ञेया ब्राह्म॰
णाः पंक्तिपावनाः ८६ ॥

ग्निहोत्र त्रिसुपर्ण अर्थात् ऋग्वेद भाग और उस
की व्रत यह जिसकोहै व्याकरण आदि छः अंगका
पढने वाला ब्राह्म विवाहसे उत्पन्न सामवेदके
आरण्यक भागको पढने वाला ये छः पंक्तिके
पवित्र करनेवालेहै ८५ वेदार्थका जाननेवाला
और कहनेवाला ब्रह्मचारीहो और हजार गो देने

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
११६

116

वाला सौ वरसका हो सो पंक्तिके पवित्र करन
हारे हैं १८६ श्राद्ध करनेके पूर्वदिनमें अथवा उसी
दिनमें तीनसे ऊपर मिलसकें अच्छे ब्राह्मण तो उ
नको नेवता देना न मिलसके तो एक दो तीन ॰
कोभी नेवता देना १८७ नेवता पाए हुए ब्राह्मणों

पूर्वेद्युरपरेद्यु र्वा श्राद्धकर्म॰
ण्युपस्थिते निमंत्रयेत त्र्यवरा
न् सम्यक् विप्रान् यथोदिता
न् १८७ निमंत्रितो द्विजः पित्र्ये
नियतात्मा भवेत्सदा नच छं
दांस्यधीयीत यस्य श्राद्धं च ॰
तद्भवेत १८८ निमंत्रिताहि ॰
पितर उपतिष्ठंति तान् द्वि॰
जान् वायुवच्चानु गच्छंति ॰
तथासीनानुपासते १८९ ॰

उस रात्रि दिनमें मैथुन कर्मको न करै और वेदको
भी न पढै श्राद्धकरनेवालाभी ये दोनो कर्मको न
करै १८८ नेवता पाए हुए ब्राह्मणोंके समीपमें पि
तरलोग खडे रहते हैं वायुरूप होकर ब्राह्मणोंके
पीछे चलता है १८९ ॥

देव कर्म्ममे अथवा पितृकर्म्ममें नेवताको पाके ब्रा
ह्मण कोई प्रकारसे भोजन को नकरे तो उस पापसे
दूसरे जन्ममें शूकर योनिको प्राप्तहोताहै १०॰ श्रा
द्धकर्ममें नेवताको पाके शूद्रा स्त्रीके साथ संगम
करै तो श्राद्धकरने वालेका संपूर्ण पापको पाताहै
११ क्रोध रहित भीतर बाहरसे पवित्र सदा अर्थात्

केतितस्तु यथान्यायं हव्य
कव्ये द्विजोत्तमः कथंचिदप
ति क्रामन् पापः शूकरतां व्र
जेत् १०॰ आमंत्रितस्तु यः श्राद्धे
वृषल्या सहमोदते दातुर्य दु
ष्कृतं किंचित्तत्सर्वं प्रतिपद्य
ते ११ अक्रोधनाः शौचपराः
सततं ब्रह्मचारिणः न्यस्तश
स्त्रा महाभागाः पितरः पूर्वदे
वताः १२

अभिमत वस्तुका अभिलाषा द्वेष अर्थात् अनभिम
त वस्तुके नपानेमें क्रोध इन दोनोसे रहित स्त्री संभो
गसे रहित शस्त्रके छोडे हुए दया आदि आठगुण
से युक्त महाभाग अनादि देवता रूप पितरहैं इस
प्रकारसे श्राद्धकरनेवाला और श्राद्धमें भोजन क
रनेवाला दोनो क्रोधसे रहितहोवे १२ ॥

जिससे इन सभोंकी उत्पत्तिहै और जिन नियमों क
रके जिनका सेवनहै उन सबोंको जानिए ब्रह्माके
पुत्र मनुजीके मरीचि आदि पुत्र जोहैं सोपितृग॰

यस्मादुत्पत्तिरेतेषां सर्वेषा॰
मप्यशेषतः येचयैरुपचर्याः
स्युर्नियमैस्तान्निबोधत १९३
मनोर्हैरण्यगर्भस्य ये मरीच्या
दयः सुताः तेषामृषीणां॰
सर्वेषां पुत्राः पितृगणाः स्मृ
ताः १९४ विराट्सुताः सोम
सदः साध्यानां पितरः स्मृताः
अग्निष्वात्ताश्च देवानां मरी॰
चा लोकविश्रुताः १९५ ॥

णहैं १९४ साध्यगणके पितर विराट्के पुत्र सोम
सदहैं देवनोंके पितर अग्निष्वात्तहैं ये सबमरीचि
के पुत्रहैं और लोकमें प्रसिद्धहैं १९५ ॥

दैत्य दानव यक्ष गंधर्व उरग राक्षस सुपर्ण किन्नर इ
न सबोंको पितर अत्रिका पुत्र बर्हिषद हैं १९६ ब्राह्म
ण क्षत्रिय वैश्य शूद्र इन सबोंका पितर क्रमसे सोम
प हविर्भुज आज्यपा सुकाली हैं १९७ कवि अंगिरा पु॰

दैत्यदानवयक्षाणां गंधर्वो
रगरक्षसां सुपर्णकिन्नराणां
च स्मृता बर्हिषदोऽत्रिजाः १९
६ सोमपा नाम विप्राणां क्ष॰
त्रियाणां हविर्भुजः वैश्याना
माज्यपानाम शूद्राणां तु सु
कालिनः १९७ सोमपास्तु कवे
पुत्राः हविष्मंतोंगिरः सुता
पुलस्त्यस्याज्यपाः पुत्रा व॰
सिष्ठस्य सुकालिनः १९८ ॥

लस्त्य वसिष्ठ इन्होंका पुत्र क्रमसे सोमप हवि
र्भुज आज्यप सुकाली हैं १९८ अग्निदग्ध अग्निद न
ग्ध काव्य बर्हिषद अग्निष्वात्त सोम्य ये सब ब्रा॰

सूण होके पितर हैं १९९ ये सब पितर मुख्य हैं इन्होंका पुत्र पौत्र अनंत है २०० ऋषियोंसे पितर

अग्निदग्धानग्निदग्धा न्काव्या
न्बर्हिषद स्तथा अग्निष्वा त्तो
श्च सौम्यां च विप्राणा मेव नि
र्दिशेत् १९९ यएते तु गणा
मुख्याः पितॄणां परिकीर्तिताः
तेषा मपीह विज्ञेय पुत्र पौत्र
मनन्तकं २०० ऋषिभ्यः पित
रोजाताः पितृभ्यो देव मान
वः देवेभ्यस्तु जगत् सर्वं चरं
स्थाण्वनु पूर्वशः २०१ ॥

उत्पन्न हैं पितरोंसे देवता और मनुष्य उत्पन्न हैं देवतोंसे क्रमकरके जंगम स्थावर संपूर्ण जगत् उत्पन्न है २०१

इन सब पितरोंको रूपेके पात्रमें अथवा रूपा से
युक्त जो पात्रहै उसमें जल मात्रभी देव तो उससे
अक्षय सुखहोताहै २०२ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके
देव कार्य्यसे पितृकार्य्य बडाहै इस कारणसे देवका

राजतै र्भाजनै रेषा मथोवा
रजतान्वितैः वार्यपि श्रद्ध-
या दत्त मक्षयायोप कल्प-
ते २०२ देवकार्य्या द्विजातीना
म्पितृकार्य्यं विशिष्यते दैवं
हि पितृकार्य्यस्य पूर्वं माप्या
यनं स्मृतं २०३ तेषा मारक्ष
भूतं तु पूर्वं दैवं नियोजयेत्
रक्षांसि हि विलुम्पंति श्राद्ध
मारक्ष वर्जितम् २०४ ॥

र्य्य प्रथम भईसे पितृकार्य्यका पूर्णता होतीहै २०
३ पितृकार्य्यका रक्षा करनहार देव कार्य्यको प
हिले करना रक्षा रहित कार्य्यको राक्षस लोप क
रतेहै २०४ ॥ ॥

पितृ कार्यके आदि अंतमे देवकार्य करना और
देव कार्यके आदि अंतमे पितृकार्य करने वाला
अपने वंश सहित झट पट नाशके प्राप्त होताहै
२०५ एकांत पवित्र दक्षिण और ढलत देशको गो

दैवाद्यन्तं तदीहेत पित्र्याद्य
न्तं न तद्भवेत् पित्र्याद्यन्तं त्वी॰
हमानः क्षिप्रं नश्यति सान्व
यः २०५ शुचिं देशं विविक्तं
च गोमयेनोपलेपयेत् दक्षि
णाप्रवणं चैव प्रयत्नेनोप॰
पादयेत् २०६ अवकाशेषु चो
क्षेषु नदीतीरेषु चैव हि वि॰
विक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेन ॰
पितरः सदा २०७ ॥

बरसे लेप करे २०६ स्वभावसे शुद्धवन आदि जो
देशनदी तीर निर्जन देश ऐसे स्थानमें श्राद्धकर
नेसे सर्वदा पितर संतुष्ट रहतेहैं ॥

पृथक् पृथक् कुशाके आसनोंसे नेवते ब्राह्मणों
के स्नान आचमन कराके बैठावे २८ प्रथम देव
कार्यमें नेवते ब्राह्मणोंके गंधमाला आदिसे पू
जनकरे पीछे पितृकार्यमें नेवते ब्राह्मणों के

आसनेषूपक्लृप्तेषु बर्हिष्म
त्सु पृथक् पृथक् उपस्पृष्टो
दकान् सम्यक् विप्रांस्तानु
पवेशयेत् २८ उपवेशित
तान्विप्रा नासनेषु जुगुप्सि
तान् गंधमाल्यैः सुरभिभि
रर्चयेद्दैवपूर्वकम् २९ ते
षा मुदक मानीय सपवि
त्रां तिलानपि अग्नौ कुर्या
दनुज्ञातो ब्राह्मणो ब्राह्मणै
स्सह ३० ॥ ॥

भी २९ कुश तिल सहित जलको ब्राह्मणोंके
आज्ञा पाके उन ब्राह्मणोंके सहित अग्निमें होम
करे ३० पहिले अग्नि सोम यम इन सबोंको ॰

हविर्देके पीछे पितरोंको अन्न आदि देवे २११ अ॰
ग्नि न होवे तो ब्राह्मणके हाथहीमें होमकरे जो॰
ई अग्नि सोई ब्राह्मणहै इस बातके मंत्र जाननेवा॰
ले ब्राह्मणोंने कहाहै २१२ क्रोधसे रहित प्रसन्नमु
ख पुरातन लोक वृद्धिके निमित्त उद्योगके श्राम

अग्नेः सोमयमाभ्यां च कृत्वा
प्यायनमादितः हविर्दानेन
विधिवत्पश्चात्संतर्पयेत्पि
तॄन् २११ अग्न्यभावे तु विप्र
स्य पाणावेवोपपादयेत् यो
ह्यग्निस्स द्विजो विप्रैर्मंत्रदर्शि
भिरुच्यते २१२ अक्रोधनान्
सुप्रसादान्वदंत्येतान् पुरात
नान् लोकस्याप्यायने युक्ता
न् श्राद्धदेवान् द्विजोत्तमान्
२१३

श्राद्धके पात्र ब्राह्मणहै इसबातको मनु आदि ऋषि
योंने कहाहै इसलिये देवतारूप श्राद्धब्राह्मणके ह
स्तमें देना यह एवं कथित विधिका अनुवादहै प्र
धान सिद्धका कथनहै २१३ ॥

अग्नौकरणहोमको दक्षिण संस्थ अर्थात् दक्षिण दिशामें करके अपसव्य करके दक्षिण हस्तसे पिं ड धरनेकी भूमिमें जल देना ११४ होम से बची जो हव्य है उससे तीन पिंड बनाके दक्षिण हाथसे एकाग्रचित्त और दक्षिण मुख होकर कुशोंपर उ

अपसव्यं मग्नौकृत्वा सर्वमा
वृत्य विक्रमं अपसव्येन हस्ते
न निर्वपेदुदकं भुवि ११४
त्रींस्तु तस्मा द्धविःशेषात् पिं
डान् कृत्वा समाहितः औदके
नैव विधिना निर्वपेद्दक्षि
णा मुखः ११५ न्युप्य पिंडां
स्ततः तांस्तु प्रयतो विधिपू
र्वकं तेषु दर्भेषु तं हस्तं नि
मृज्या ल्लेप भागिनाम् ११६

न पिंडोंको देवे ११५ अपने कर्म्मकांडके सूत्रमें क थित विधिसे कुशोंपर उन पिंडोंको देकर पिंडके जो कुशा है उसके मूलमें हाथको पोंछे वृद्ध पितामह आदि तीन पुरुषोंके तृप्तिके लिये ११६ ॥

मंत्र जानने वाला उत्तर मुख होकर आचमन और
तीन प्राणायामको यथाशक्ति करके वसंत आदि
छः ऋतुओंको और पितरोंको नमस्कार करै २१७
पिंडदान पहिले पिंड रखनेकी भूमिमें जो जल दिया
है उस पात्रमें बचा जो जलहै उसको सब पिंडोंके

आचम्यो दक्परावृत्य त्रिराय
म्य शनै रसून् षडृतूंश्च नम
स्कुर्यात् पितॄनेवच मंत्रवित्
२१७ उदकं निनयेच्छेषं शनैः
पिंडान्तिके पुनः अवजिघ्रे
च्च तान् पिंडा न्यथा न्युप्तान्
समाहितः २१८ पिंडेभ्य स्त्व
ल्पिकां मात्रां समादायानु
पूर्वशः तानेव विप्रा नासी
ना न्विधिवत्पूर्वं माशयेत १९

समीपमें क्रमसे देवै पीछे उन पिंडोंको एकाग्र चि
त्त होकर क्रमसे सूंघै २१८ पिंडोंसे थोड़ा थोड़ा अं
शको क्रमसे लेकर उसको नेवते हुए बैठे ब्राह्मणों
के विधिपूर्वक पहिले भोजन करावै २१९

पिताके जीते हुए मरेहुए जो पितामह आदि तीन पुरुष इनकी श्राद्धकरै अथवा पिताका जो ब्राह्मण है इसके स्थानमें पिताही को भोजन करावे। और पितामह प्रपितामह को पिंडदेवे दोनोंके निमित्त ब्राह्मण भोजन भी करावे ११ जिसका पिता मरगया हो और पितामह जीताहो सो पिता का

म्रियमाणे तु पितरि पूर्वेषामेव निर्वपेत् विप्रवद्वापि तं श्राद्धे स्वकं पितर माविशेत् ११ पिता यस्य तु वृत्तः स्याज्जीवे च्चापि पितामहः पितुः सनाम संकीर्त्य कीर्तयेत् प्रपितामहम् १२ पितामहो वा तच्छ्राद्धं भुंजीतेत्य ब्रवीन्मनुः कामं वा समनुज्ञात स्वयमेव समाचरेत् १३

नाम लेकर प्रपितामहका नामलेवे १२ अथवा जिस प्रकारसे जीते पिताको भोजन कराना कहाहै इसी प्रकारसे जीते पितामहको भोजन करावे पिता प्रपितामहको पिंडदेवे इस बातको मनुजीने कहाहै अथवा पितामहके आज्ञा पाके पिता प्रपितामह वृद्धप्रपितामहको पिंडदेवे पि

तामहको भोजन करावे २२२ उन ब्राह्मणोंके हस्त
में तिल जल कुशको देके पिंडोंसे निकाला जो थो
डा थोडा भागहै उसको पिता आदि तीनोंके जो ब्रा
ह्मणहै उनको क्रमसे देवे इस बातको पहिले कह
आयेहै बीचमें और प्रसंग चला इसलिये उसीका स

तेषां दत्वातु हस्तेषु सपवि॰
त्रं तिलोदकं तत्पिंडाग्रं प्रय
च्छेत स्वधैषा मस्त्विति ब्रुवन्
२२३ पाणिभ्यां तूपसंगृह्य स्व॰
य मन्नस्य वर्द्धितं विप्रान्तिके
पितॄन् ध्यायन् शनकै रुप॰
निक्षिपेत् २२४ उभयो र्हस्त
यो र्मुक्तं यदन्न मुपनीयते
तद्विप्र लुम्पन्त्य सुराः सह॰
सा दुष्टचेतसः २२५ ॥

रण करायाहै २२३ आप दोनों हाथोंसे अन्न संपूर्ण
पात्रको रसोईके गृहसे लाकर पितरोंका चिंतन
करता हुआ ब्राह्मणोंके समीपमें धीरेसे परोसे २२४
एक हाथसे लाए हुए अन्नको असुर लोग छीन ले
तेहै इसलिये दोनो हाथसे लाना चाहिए २२५

एकाग्रचित्त होकर भूमिमें गिरने न पावे ऐसी री
तिसे अंजन दाल शाग दूध दही घी मधु इन सब
को भूमिमें स्थापन करै २२६ भक्ष्य अर्थात् लड्डू आ
आदि भोज्य अर्थात् जाडर आदि नाना प्रकार फल
मूल आदि हृदयके प्रिय मांस सुगंध सहित पी॰

गुणांश्च सूप शाकाद्यान् प
यो दधि घृतं मधु विन्यसेत्प्र
यतः एवं भूमावेव समाहि॰
तः २२६ भक्ष्यं भोज्यं च विवि
धं मूलानिच फलानिच हृ
द्यानि चैव मांसानि पानानि
सुरभीणि च २२७ उपनीय॰
तु तत्सर्वं शनकैस्स समा॰
हितः परिवेषयेत प्रयतो गु
णान् सर्वा न्प्रचोदयत् २२८

नेकी वस्तु इन सभोंको भी स्थापन करै २२७ एका॰
ग्र चित्त होकर सब पदार्थोंका ब्राह्मणोंके समीप
लाकर क्रमसे यह मधुर है आमिल है ऐसा सभोंके
गुणको कहता संते परोसे २२८ रोदन क्रोध असं॰

म०
स्मृ०टी०
भा०
१२३

123

त्य भाषण पांवसे छूना अन्नको नहूवे उछलाय
उछलाय अन्नको पात्रमें नगावे २९ रोदन कोप
असत्यभाषण पांवसे छूना अन्नको उछलाना इन
सभोंसे क्रम करके प्रेत शत्रु कुकुर राक्षस पाप-

नास्र मापातये ज्जातु नकु-
प्ये नानृतं वदेत् नपादेन स्पृ-
शे दन्नं नचैतद वधूनयेत् २९
अस्रं गमयति प्रेतान् कोपोरी
न नृतं शुनः पादस्पर्शस्तु र-
क्षांसि दुष्कृती न वधूननम्
३०. यद्यद्रोचेत विप्रेभ्य स्तत्त-
द्दद्याद मत्सरः ब्रह्मोद्याश्च क-
थाः कुर्यात् पितृणा मेतदी-
प्सितम् ३१ ॥

करने वाला इन सभोंको वह प्राप्त होता है ३०॥ म-
त्सर अर्थात् औरके शुभमें द्वेष करनाको छोड़कर
जो जो वस्तु ब्राह्मणोंके रुचै उस उस वस्तुको देवै पर-
मात्माकी निरूपणकी कथाको कहै पितरोंके यह
इष्ट है ३१

वेद धर्मशास्त्र आख्यान अर्थात् गरुड मित्रावरुण आ
दिकी कथा महाभारत पुराण श्रीसूक्त शिव संक
ल्प सूक्त इन सबको ब्राह्मणोंके सुनावे २१ आप सं-
तुष्ट होकर प्रिय वाणी कथन आदिसे ब्राह्मणोंको
संतुष्टकरे जलदी नकरे यह अच्छा लड्डूहै यह अच्छी

स्वाध्यायं श्रावयेत्पित्र्ये धर्मशा
स्त्राणि चैवहि आख्याना नी-
तिहासां श्च पुराणानि खिला
नि च २१ हृष्टेयत् ब्राह्मणो स्व
ष्टो भोजयेच्च शनैः शनैः अ-
न्नाद्येना सकृच्चैतान् गुणै श्च
परिचोदयेत् २२ व्रतस्थ मपि
दौहित्रं श्राद्धे यत्नेन भोजये-
त् कुतपं चासनं दद्या त्तिलै
श्च विकिरे न्महीम् २३ ॥

जाइएहै इस रीतिसे वस्तुओंके गुणको कथन कर
त संते भोजन करावे २२ दौहित्र अर्थात् लड़की
का लड़का व्रतमैंभी हो तो उसको यत्न पूर्वक श्रा-
द्धमें भोजन करावे नेपाली कंबल का आसन देवे
श्राद्धकी भूमिमें तिलको छोटे १ २३ ॥

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
१२४

124

श्राद्धमें तीन वस्तु पवित्रहैं दौहित्र नेपाली कंबल
तिल और तीन वस्तुको प्रशंसाहै श्राद्धमे वह तीनों
वस्तु येहै कि पवित्रता शांति धीरता २३५ वे ब्राह्म
ण सब मौन होकर अति गरम अन्नको भोजन करै

त्रीणि श्राद्धे पवित्राणि दौहि
त्रः कुतप स्तिलाः त्रीणि चा
त्र प्रशंसंति शौच मक्रोध म
त्वरं २३५ अत्युष्णं सर्व मन्नं स्या
द्भुंजीर स्तेपि वाग्यतः नच द्वि
जातयो ब्रूयु दात्रा पृष्टा हवि
र्गुणाः २३६ याव दुष्णं भव
त्यन्नं यावदश्नाति वाग्यतः
पितर स्तावदश्नंति यावन्नो
क्ता हवि र्गुणाः २३७ ॥

वस्तोंके गुणको दाता पूछे ब्राह्मन बोले २३६ जब
तक अन्न गर्महै और भोजन करनेवाले बोलते नही
है तबतक पितरलोग भोजन करतेहैं २३७ ॥

शिरको बांधे हुए और दक्षिण मुख बैठे हुए जो मनुः
को पहिने हुए जो भोजन को करतेहैं वह भोजन
राक्षसको पहुंचताहै चंडाल वराह अर्थात् सूकर मु
रगा कुक्कुर रजस्वला नपुंसक ये सब ब्राह्मणोंके

वेष्टितशिरास्तेके यच्चभुंक्ते द
क्षिणामुखः सोपानत्कश्च य
द्भुंक्ते तद्वै रक्षांसि भुंजते २३
चांडालश्च वराहश्च कुक्कुटः
श्वा तथैवच रजस्वला च षं
ढश्च नेक्षेरन्नश्नतो द्विजान्
२३ होमे प्रदाने भोज्ये च य
देभिरभिवीक्षितं दैवे कर्मः
णि पित्र्ये वा तद्गच्छत्यथा
यथम् २४ ॥ ॥

भोजन करते हुए न देखैं २३ देवकर्ममें अथवा
पितृकर्ममें इन सभोंके देखनेसे सब कर्म नष्ट
हो जाताहै २४ सूकर मुरगा कुक्कुर शूद्र ये सब

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
१२५

125

क्रम करके सूंघना पक्षकी वायु दृष्टि स्पर्श इन स॰
भोंसे नाश करतेहैं २४१ खंजवा काणा दाताका ट॰
हलभी हो अथवा हीन अंगवाला किम्वा अधिक अं
ग वाला हो तो इन सभों के श्राद्धके देशसे निकाल

घ्राणेन सूकरो हंति पक्षवाते
न कुक्कुटः श्वातु दृष्टि निपाते
न स्पर्शेना वरवर्णजः २४१
खंजोवा यदिवा काणो दातुः
प्रेष्योपि वा भवेत् हीनाति रि
क्तगात्रोवा तमप्यपनयेत् पुनः
२४२ ब्राह्मणं भिक्षुकं वापि
भोजनार्थमुपस्थितं ब्राह्मणैर
भ्यनुज्ञातः शक्तितः प्रति पू
जयेत् २४३ ॥

देवे २४२ ब्राह्मण अथवा भिक्षुक ये दोनों भोजन के
अर्थ आएहों तो नेवते ब्राह्मणोंके आज्ञा पाके शक्ति
पूर्वक उन्होंका प्रतिपूजन करै २४३ ॥

सर्व प्रकारके अन्न आदिको व्यंजन आदिसे मिलाके ज
लडालके इस अन्नको भोजन किए जो ब्राह्मणहै उन्हों
के आगे भूमिमे कुशाके ऊपर डालदेवे जो बालक अ
ग्निदाहके योग्य नहींहै और मरगएहै और जो दोषसे
रहित कुलस्त्रियोंके त्याग करने वालेहै और मरगए
है इन सभोंको यह अन्न मिलाताहै जो कुशाके ऊ

सार्वं वर्णिक मन्नाद्यं सन्नीया
प्लावि वारिणा समुत्सृजेत् भु
क्तवता मग्रतो विकिरन्भुवि
४४ असंस्कृत प्रमीतानां त्या
गिनां कुलयोषिताम् उच्छि
ष्टं भागदेयं स्या द्दर्भेषु विकि
रश्च यः ४५ उच्छेषणं भूमिग
ते मजिह्मस्या शठस्यच दास
वर्गस्य तत्पित्र्ये भागधेयं प्र
चक्षते २ ४६ ॥ ॥

पर डाल गयाहै २४५ भूमिमें जो जूठा अन्नहै सो स
ब दास वर्गकाहै परंत वह दास वर्ग कुटिलता और
वंचकता ये दोनों दोषसे रहितहोवे २४६ ॥

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्योंके मरण दिनसे सपिंडी कि

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
१२६

126

यातक विश्वेदेवके निमित्त ब्राह्मण भोजन नकरा वे किंतु प्रेतके निमित्त एक ब्राह्मणको भोजन करावे और एक पिंडको देवे ४७ सपिंडी करणेतर अमावस्याकी श्राद्धके विधानसे क्षयाहमें भी पिंडको

असपिंड क्रियाकर्म द्विजा॰
तेः संस्थितस्यतु अदैवं भोज॰
येच्छ्राद्धं पिंडमेकं तु निर्वपे
त् ४७ सह पिंड क्रियायांतु
कृतायामस्य धर्मतः अनयै॰
वावृताकार्यं पिंडं निर्वपनं
सुतैः ४८ श्राद्धं भुक्त्वाय उच्छि
ष्टं वृषलाय प्रयच्छति समूढ॰
ो नरकं याति कालसूत्र॰
मवाक् शिराः २४९ ॥

अन्न देवे २४८ श्राद्धके अन्नको भोजन करके जूठा अन्न शूद्रको जो देताहै सोमूढ नीचे शिर किए हुए कालसूत्रनाम नरक में जाताहै २४९ ॥

अश्राद्धान भोजन करके उस दिन रात्रिमें कोई स्त्रीके साथ जो गमन करताहै उसका पितर एक मास तक उसी स्त्रीके विष्टामें शयन करतेहै २५१ श्राद्ध प्रकारसे भोजन किया ऐसा पूछके तृप्त जानके

श्राद्धभुग्वृषली तल्पं तदह र्योधि गच्छति तस्याः पुरीषे तन्मासं पितरस्तस्य शेरते २५० पृष्ट्वा स्वदित मित्येवं तृ प्ता नाचमयेत्ततः आचांता श्चानु जानीया दभितो रम्यता मिति २५१ स्वधा स्त्वित्येव तं ब्रु युर्ब्राह्मणा स्तदनन्तरं स्वधा कारः पराह्याशीः सर्वेषु पितृ कर्मसु २५२ ॥ ॥

आचमनकराना तदनंतर जाइए ऐसा बोले आइः करने वाला २५१ तदनंतर वे सब ब्राह्मण स्वधास्तु ऐसा बोले संपूर्ण पितृकर्ममें स्वधा ऐसा करना व डा आशीर्वादहै २ ५२ तदनंतर सब ब्राह्मणों के

म॰
स्मृ॰ टी॰
भा॰
१२२

127

शेष अन्नको निवेदन करै जैसा वह ब्राह्मण कहै जैसा करै २५३ एकोदिष्ट श्राद्धमें तृप्ति प्रश्नके स्था॰ ने स्वदितं ऐसा कहना चाहिए देवताके निमित्त जो श्राद्ध है उसमें रुचितं ऐसा कहना चाहिए ५४

ततो भुक्तवतां तेषा मन्नं॰
शेषं निवेदयेत् यथा ब्रूयु
स्तथा कुर्या दनुज्ञात स्ततो
द्विजैः ५३ पित्र्ये स्वदित मित्ये
व वाच्यं गोष्ठेषु सुश्रुतं संप
न्न मित्यभ्युदये दैवे रुचित ॰
मित्यपि ५४ अपराह्ण स्तथा ॰
दर्भा वास्तु सम्पादनं तिलाः
सृष्टि र्मृष्टि र्द्विजाश्चाग्र्याः श्रा
द्ध कर्मसु सम्पदः ५५ ॥

अपराह्ण काल कुशा गोबर आदिसे भूमिका शोधन तिल उड़ावना अन्न आदिका संस्कार पंक्तिके पवित्र करनेहार ब्राह्मण ये सब पार्वण श्राद्धमे संपत्ति है २५५

मन्त्र पूर्वाह्ण काल हविय भूमि शोधन जो पूर्वक
हे आपेहै ये सब देवकर्मके संपत्तिहै २५६ मुनियों
के अन्न दूध सोमलता का रस विकार रहित मांस
बनाया विना लवण सैंधा आदिये सब स्वभावसे ह
वि कहातेहै २५६ गोष्ठी श्राद्ध अर्थात द्वादश प्रका
रके श्राद्ध गणनामें गोष्ठा शुद्ध्यर्थमष्टमे ऐसा वि॰

दर्भाः पवित्रं पूर्वाह्णो हवि॰
ष्याणि च सर्वशः पवित्रं य
च्च पूर्वोक्तं विज्ञेया हव्यसंप
दः २५६ मुन्यन्नानि वयः सो
मो मांसं यच्चात्रुपस्कृतं अक्षा
र लवणं चैव प्रकृत्या हवि
रुच्यते २५७ विसृज्य ब्राह्म॰
णांस्तांस्तु नियतो वाग्यतः
शुचिः दक्षिणां दिशमाकां
क्षन् याचेते मान्वरान्पितॄन्
२५८

सामित्रने कहाहै २५८ में सुकृतं ऐसा कहना
चाहिए उन ब्राह्मणोंको विदाकरके श्राद्ध करने
वाला पवित्र होकर निश्चिंत दक्षिण दिशाकी
आकांक्षा करत पितरों से आगे जो वर कहेंगे
मांगे २५८ ॥

हमारे कुलमें दाता वेद संतति ये सब बढे श्रद्धा

म॰
स्मृ॰ टी॰
भा॰
१२८

128

वनी रहै बहुत धन आदि देनेकी वस्तु होवें २६०
इस रीतिसे पिंडोंको देकर तदनंतर उन पिंडोंको
गौ ब्राह्मण बकरा अग्नि इन सभोंमेंसे एकको भो
जन करावे अथवा जलमें डालदेवे २६१ कोई आचा

दातारो नोभिवर्द्धंतां वेदाः
संततिरेव श्रद्धाचनो माव्य
गम बहुदेयं च नोस्त्विति ।
२६० एवं निर्वपनं कृत्वा पिं
डांस्तां तदनंतरं गां विप्र म
ज मग्निं वा प्राशयेदप्सु वा
क्षिपेत् २६१ पिंड निर्वपणं
केचित्परस्ता देव कुर्वते
वयोभिः खादयंत्यन्ये प्रक्षि
पंत्य नलेप्सुवा २६२ ॥

र्य कहतेहैं कि ब्राह्मण भोजनके पीछे पिंडदान
करना कोई आचार्य ऐसा कहतेहैं कि उन पिंडों
के पक्षियोंसे भोजन कराना कोई आचार्य जल
में अथवा अग्निमें डालना ऐसा कहतेहैं २६२ ॥

पतिव्रता अपनी स्त्री पितरोंकी पूजा करने वाले ल
डका होनेकी इच्छा करते पितामह पिंडको अच्छे प
कारसे भोजन करै बडी आयुष यश बुद्धि संतति स
त्वगुण धर्म इन सभोंसे युक्त पुत्र होवें २ ६३ ॥

पतिव्रता धर्मपत्नी पितृपूज
न तत्परा मध्यमं तु ततः पिं
ड मद्यात् सम्यक् सुतार्थिनी
६२ आयुष्मंतं सुतं सूते यशो
मेधा समन्वितं धनवंतं प्रजा
वंतं सात्विकं धार्मिकं तथा
६३ प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य
ज्ञाति प्रायं प्रकल्पयेत् ज्ञा-
तिभ्यः सत्कृतं दत्वा बांधवा-
नपि भोजयेत् ६४ ॥

हाथको धोके आचमन करके बचे अन्नसे जाति-
को भोजनकरावे तदनंतर संबंध वालेको भोजन -
करावे ॥ २ ६४ ब्राह्मणोंका जूठ जब तक आ-

स्थान निदान होवे ब्राह्मणोंके विदाईके अनंतर जू-
ठे स्थानको धोवे तदनंतर गृह बलिकरै यह धर्म
व्यवस्थाके शास्त्रहै २६५ जो हवि बहुत कालतक
तृप्तिको करतीहै और जो हवि अनंत फलके लिये

उच्छेषणं तु तत्तिष्ठेद्यावद्वि-
प्रा विसर्जिताः ततो गृहबलिं
कुर्यादिति धर्मो व्यवस्थितः
२६५ हविर्यच्चिररात्राय यच्चा-
नन्त्याय कल्पते पितृभ्यो वि-
धिवद्दत्तं तत्प्रवक्ष्याम्यशेष-
तः २६६ तिलैर्व्रीहियवैर्माषै-
रद्भिर्मूलफलेन वा दत्तेन
मासं तृप्यन्ति विधिवत्पितर-
रो नृणाम् २६७ ॥

होतीहै पितरोंको विधिपूर्वक देनेसे सो सब कहैं-
गे २६६ तिल धान्य यव उड़द जल मूल फल इन्हों-
मेसे कोई एक वस्तुको शास्त्रकी रीति करके देनेसे
१ मासतक पितरोंकी तृप्तिहोतीहै २६७ ॥

मछली हरिण भेड़ा पक्षी इन सभोंके मांसको देने-
से क्रम करके २३४५ महीना तक पितरोंके तृप्ति-
होती है २६८ बकरा चित्र मृग एण अर्थात् मृग वि-
शेष रुरु पृषत मृग विशेष है इन सभोंके मांसको देने

द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन त्रीन्मा-
सान्हारिणेन तु औरभ्रेणाथ च-
तुरः शाकुनेनाथ पञ्च वै २६८
षण्मासांश्छागमांसेन पार्षते-
न च सप्त वै अष्टावैणस्य मांसे-
न रौरवेण नवैव तु २६९ दश
मासांस्तु तृप्यन्ति वराहमहि-
षामिषैः शशकूर्मयोस्तु मां-
सेन मासानेकादशैव तु २७०

से क्रमकरके ६ ७ ८ ९ महीनातक २६९ सूकर भै-
सा इन दोनोंमेंसे कोई एकके मांसको देनेसे १० मास
तक खरहा कछुआ इन दोनोंमेंसे कोई एकके मां-
सको देनेसे ११ महीना तक २७० ॥ गोके दूध-

म. स्मृ. टी. भा. १३.

से अथवा उसी हथके जाडरिमें १ वर्षतक बाधीण
स अर्थात् नदी आदिमें जलको पीने हुए जिस बक
राका दोनों कान जलको छूवें और श्वेतवर्णहो इंद्रि
य जिसकी क्षीणहोकी मांससे १२ वर्षतक ११ का
ल शाक महाशल्का अर्थात् मत्स्य विशेष गैंडा ला

मेवल्मेरेन्न गव्येन पयसा पाय
से नव वर्द्धीण मस्य मांसेन
त्रप्ति र्द्वादश वार्षिकी ११
कालशाके महाशल्काः खड्ग
लोहामिषं मधु आनंत्या यैव
कल्पन्ते मुन्यन्नानिच सर्वशः
१२ यत्किंचि न्मधुना मिश्रं
प्रदद्यात्तु त्रयोदशी तदप्यक्ष
यमेव स्या द्वर्षासु च मघा
सु च १३ ॥

ल बकरा इन सभोंमेसे कोई एककी मांसको देनेसे
और मधुसे तीनोंसे अनंत वर्षतक १२ वर्षाकालमें
मघा युक्त त्रयोदशी तिथिमें कोई वस्तुको मधुसे यु
क्तकरके देवे तो भी अक्षयफलको प्राप्तहोता है १३

पितरलोग मनातेहैं कि हमारे कुलमे ऐसा पुरुष
उत्पन्न होवे कि भाद्रकृष्ण त्रयोदशी तिथिमें अथवा
उसी मासके दूसरी कोई तिथिमें पूर्वदिशामें सूर्य-
की छाया गए हुए कालमें मघवीसे युक्त जाउरिको
देवे १३४ जो कुछ विधिपूर्वक अच्छे प्रकारसे अ-

अपिनः सकुले जाया योनो
दद्या त्रयोदशीम् पायसं म-
धुसर्पिभ्यां प्राक्छाये कुंजर
स्य च १४ यद्यद्ददाति विधिव
त् सम्यक् श्रद्धा समन्वितः
तत्पितॄणां भवति परत्रा
नंत मक्षयं १५ कृष्णपक्षे द
शम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशी
म् श्राद्धे प्रशस्ता स्तिथयो
यथैताना तथेतराः १६ ॥

द्धा सहित पितरोंके देतेहैं उसका अनंतफल पर-
लोकमें होताहै १५ कृष्णपक्षमें दशमीसे लेके -
चतुर्दशीको छोडकर अमावस्या तक तिथि जैसी
श्राद्धमें अच्छीहैं तैसी और नहीं सततिथि और न
तरोंमें श्राद्धकरनेसे संपूर्ण कामना को पाताहै -

म.
स्स.टी.
भा.
१३१

जैसी द्वितीया चतुर्थी भरणी रोहिणीमें विषम ति
थि और विषम नक्षत्र में श्राद्धकरनेसे धन विद्यासे।
परिपूर्ण संततिको पाताहै जैसे द्वितीया प्रतिपत्।
तृतीया अश्विनी कृत्तिकामें १७ जिस प्रकार क-
रके शुक्लपक्षसे कृष्णपक्ष प्रशस्तहै श्राद्धमें ति-

(131)

यथ्‌ चैवं दिनेष्वेषु सर्वान्
कामान्समश्नुते प्रत्यक्ष अपि
त स्वर्गे स्वर्ग प्राप्नोति शु-
क्लो यथा चैवापरः पक्षः
पूर्वपक्षा द्विशिष्यते तथा।
श्राद्धस्य पूर्वाह्णा दपराह्णो
विशिष्यते १८ प्राचीना वी-
तिना सम्य मपसव्य मतन्द्रि
णा पित्र्यमा निधना त्कार्य
विधिव द्दर्भपाणिना १९ ॥

सी प्रकारकरके पूर्वाह्णकालमें अपराह्णकाल प्रश
स्तहै १८ दहिने कंधे जनेऊको रक्खे हुए आलस्यको
छोड़े हुए कुशाको हाथमें लिए हुए पितृतीर्थ कर
के शास्त्रकी रीतिसे पितरोंके कर्मको जबतक करै १९

रात्रिमें श्राद्ध न करना वह राक्षसी वेला कहाती है
और दोनो संध्यामें और प्रातकाल तीन मुहूर्त तक
इसमें भी श्राद्ध न करना २८० इस विधिसे वर्षमें हे
मंत ग्रीष्म वर्षा यह तीनो ऋतुमें तीन वेर श्राद्धको

रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी
कीर्तिता हि सा संध्ययो रुभ
योश्चैव सूर्ये चैवा चिरो दि
ते ८० अनेन विधिना श्राद्धं
त्रिरब्दस्येह निर्वपेत् हेमं
त ग्रीष्म वर्षासु पांचयज्ञि
क मन्वहम् ८१ नपैत्र य
ज्ञियो होमो लौकिको ग्नौ
विधीयते न दर्शेन विना
श्राद्धं माहिताग्ने र्द्विजन्मनः
८२

करे और पंच महायज्ञ तो नित्य हो करे २८१ अग्नि
होत्रीका पितृयज्ञ संबंधी होम लौकिकाग्निमें नही
होता और अमावस्या विना श्राद्ध नही होती २८२॥

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
१३२

132

पंचयज्ञ संबंधी श्राद्धनहोमके तो स्नानकरके जो
ब्राह्मण जलसे तर्पण करताहै उसीसे संपूर्ण पि
तृयज्ञके फलको पाताहै ८३ पिताको वसु कह
तेहैं पितामहको रुद्रकहतेहैं प्रपितामहको ।

यदेव तर्पयेत्यद्भिः पितॄन्
स्नात्वा द्विजोत्तमः तेनैव ।
कृत्स्नं माप्नोति पितृयज्ञ ।
क्रियाफलं ८३ वसून्वदन्ति
तु पितॄन् रुद्रांश्चैव पिताम
हान् प्रपितामहांस्तथादि॰
त्यान् श्रुतिरेषा सनातनी ८
४ विघसाशी भवेन्नित्यं नि
त्यं वामृतभोजनः विघसो
भुक्तशेषं तु यज्ञशेषं तथा॰
मृतम् ८५

आदित्यकहतेहैं यहनित्यश्रुतिहै ८४ ब्राह्मणोंके
भोजनसे बचे जो अन्न उसको भोजनकरके रहै अथ
वा यज्ञकरानेसे बचे जो अन्न उसको भोजन करके रहै ८५

भृगुजी कहतेहैं कि हे ऋषिलोगो पंचयज्ञके विधा॰
नको कहा अब ब्राह्मणों की जीविकाको विधानको
कहा अब ब्राह्मणोंको स्नातक २५९ इतिश्रीमनुस्मृ॰
ति भाषा टीकायां कुल्लूक भट्ट व्याख्यानु सारिण्यां ॰
श्री बाहदेवीदयाल सिंहकारितायां श्रीमत्कम्पनी
संस्कृत पाठशालीय धर्म्मशास्त्रि गुलजार शर्म्म प॰

एतद्वोभिहितं सर्वं विधानं
पांचयज्ञिकम् द्विजाति मुख्य
वृत्तीनां विधानं श्रूयता मिति
२५९ इति मानवे धर्मशास्त्रे
भृगु प्रोक्तायां संहितायां तृ॰
तीयोध्यायः ३ ॥ चतुर्थ मा
युषोभाग मुषित्वा द्यगुरौ द्वि
जः द्वितीय मायुषोभागं कृ
तदारो गृहे वसेत् १ ॥

ण्डित कृतायां तृतीयो ध्यायः ३॥ आयुषका चारभा
गमें पहिला भागतक गुरुकुलमें वासकरे दूसरे ॰
भागतक विवाह करके गृहमें वास करके रहे इस
स्थानमें यह संदेह होसकताहै कि आयुषका नि॰
श्चितकाल परिमाण जाननहीं पड़ता चार भागः॰
का पहिलाभाग किस प्रकारसे जाना जाय कदाचि
त् कहो कि सौवर्षका पुरुष होतेहैं यह श्रुतिमें लि

सौहै तो २५ वर्ष चौथाभाग हुआ तो मनुजीने छती
स वर्षतक ब्रह्मचर्य करना यह कहाहै इसके साथ
विरोध पडेगा इसलिये जब तक ब्रह्मचर्यहो सके ॰
सोई आयुषा चौथाभागहै १ जीवोंको अद्रोह करके
अथवा थोडा द्रोह करके जो जीविकाहै उसे वि॰

नद्रोहे णैव भूताना मल्पद्रो॰
हेण वापुनः याहत्तिस्तां स॰
मास्थाय विप्रो जीवे धनापि॰
द २ यात्रा मात्र प्रसिद्धार्थं ॰
स्वैः कर्मभि रगर्हितैः अक्लेश
न शरीरस्य कुर्वीत धनसंच॰
यम ३ ॥

ना आपत्कालमें ब्राह्मण जीवन करै अनिंदित कर्म
से और शरीरको क्लेश नहोवे पावै ऐसी रीतिसेअ
पने भोजन मात्रके लिये धनका संचय करै ३ ॥

ऋत अमृत मृत प्रमृत रुठ सांच इन सब वृत्तियों
से जीवन करे उञ्छ शिलको ऋतकहतेहैं विना
मांगे मिले उसीको अमृत कहतेहैं मांगेसे मिले

ऋता मृताभ्यां जीवेत मृते
न प्रमृतेनवा सत्यानृताभ्यां
मपिवा न स्ववृत्त्या कदाचन
४ ऋत मुञ्छशिले ज्ञेयं म
मृते स्यादयाचितं मृतं तु या
चितं भैक्ष्य प्रमृतं कर्षणं
मृते ५ सत्यानृते तु वाणि
ज्यं तेन चैवापि जीव्यते से
वा स्ववृत्ति राख्याता तस्मा
तां परि वर्जयेत् ६ ॥

उसको मृत कहतेहैं खेवनियोंके कर्मको रुठ सां
च कहतेहैं सेवाको कुत्तेकी वृत्ति कहतेहैं इस लि
ये कुत्तेकी वृत्तिको छोडदेवे ६ ॥ नित्य नैमित्ति

म. स्म. टी. भा. १३४

134

क धर्मकृत्य पोष्यवर्ग सहितको तीनवर्षतक भोज
न होसके इतने अन्नका संचयकरै अथवा हर्व का॰
थितको एक वर्षतक भोजन होसके इतने अन्नका
संचय करै अथवा सबको एक दिनके भोजन यो
ग्य अन्नका संचय करै चार प्रकार ब्राह्मण कहेहैं

कुसूल धान्यको वा स्यात् कुं
भी धान्यक एव वा त्र्यैहिको
वापि भवे दश्वस्त निक एव॰
वा ७ चतुर्णा मपि चैतेषां द्वि
जानां गृह मेधिनां ज्यायान्
परः परोज्ञेयो धर्मतो लोक
जित्तमः ८ षट् कर्मको भवे
त्त्वेषां त्रिभि रन्यः प्रवर्तते द्वा
भ्या मेक श्चतुर्थस्तु ब्रह्मस॰
त्रेण जीवति ९ ॥

इसमें जो जो पर कहेहैं सो सो पूर्व पूर्वसे बडे हैं ध
र्मसे लोकको जितने वाले हैं ८ इन चारों मे पहिले
षट्कर्म अर्थात् यज्ञ कराना पढाना प्रतिग्रह इत्या
दि जो कह आये हैं सो जीवन करै दूसरा तीन कर्म
अर्थात् यज्ञ करना पढाना प्रतिग्रहसे जीवन करै ती
सरा दोकर्म यज्ञकराना पढाने से जीवन करै ॥

अग्निहोत्रको करै दर्श शिल उंछ इन दोनोंसे जी॰
वन करै अग्निहोत्रको करै दर्श अर्थात् अमावस्या
पूर्णमासी आग्रयण अर्थात् नवीन अन्न जब हो॰
वे इन तीनों कालमें इष्टि अर्थात् यज्ञको केवल
जीविकाके निमित्त असत् प्रिय कथा विचित्र है

येषु शिलोंछाभ्या मग्निहो
त्र परायणः इष्टीः पार्वाय
नांतीयाः केवला निर्वपेत्स
दा ॥ न लोकवृत्तं वर्तेन वृ
त्तिहेतोः कथंचन अजिह्मा
मशठां शुद्धां जीवेत् ब्राह्म
ण जीविकाम् ॥ संतोषं •
परमास्थाय सुखार्थी संय
तो भवेत् संतोषमूलं हि॰
सुखं दुःखमूलं विपर्ययः ॥

सी आदिको न करै रूढगुण कहके और इंभमें
जो जीविका है उसको छोड़कर ब्राह्मणोंकी शु॰
द्ध जीविकासे जीवन करै ॥ परम संतोषको पा
के सुखार्थी संयम अर्थात् इन्द्रिय निग्रहको करै
क्यों कि सुखका जड़ संतोष है दुःखका जड़ असंतो

म॰
स्मृ॰ टी॰
भा॰
१३५

135

यहै १२ जो पीछे जीविका कहि आएहै इसमें से
कोई एक जीविकासे जीवनकरत वेदका पठन स
माप्तकरके स्नानके निमित्त अर्थात् समावर्त्तन क
र्मके निमित्त संयम अर्थात् इंद्रियोंका निग्रहको
करै और स्वर्ग यश आयुष्य इन सभोंके हितकरन
हारजो व्रत आगे कहैंगे इनको धारण करै १३ आ॰

अतोन्यतमया वृत्त्या जीवेत्तु
स्नातको द्विजः स्वर्गायुष्य य
शस्यानि व्रतानीमानि धारये
त् १३ वेदोदितं स्वकं कर्म नि
त्यं कुर्यादतंद्रितः तद्धि कुर्व
न्यथाशक्ति प्राप्नोति परमां
गतिम् १४ नेहेतार्थान्प्रसंगे
न न विरुद्धेन कर्मणा न वि
द्यमानेष्वर्थेषु नार्त्यामपि य
तस्ततः १५ ॥

लसको छोड़कर वेदमें कथित जो अपना कर्महै
इसको करै यथाशक्ति इस कर्मको करनेसे परम
गतिको पाताहै १४ गाना बजाना यज्ञ करानेके
योग्य जो नहीहै इसको यज्ञ कराना इन सब क
र्मोंसे जीवन न करै पतित आदिसेभी धनका सं
ग्रह न करै १५ ॥
॥

इच्छासे रूप रस गंध स्पर्श शब्द इन सभोंमे असक्त
न होवे इन सबोंमे अति असक्तिको मनसे निवृ-
त्ति करे ५९ वेद पढनेका विरोधी जो अर्थ कहिए
धन उसका त्याग करना जिस किसी प्रकारसे वे

इंद्रियार्थेषु सर्वेषु न प्रसज्ये
त कामतः अतिप्रसक्तं चैते
षां मनसा सन्निवर्तयेत ५९
सर्वान् परित्यजे दर्थान् स्वा
ध्यायस्य विरोधिनः यथा
तथा ध्यापयंस्तु साह्यस्य कृ
त कृत्यता ६० वयसः कर्म
णोर्थस्य श्रुतस्याभिजनस्य
च वेषवाग्बुद्धि सारूप्य मा
चरन् विचरे दिह ६१ ॥

हको पढना रहे इसीसे कृतकृत्य अर्थात् करनेके
योग्य जो वस्तु सो होजाताहै ६० वय कर्म अर्थ श्रु
त अर्थात सुनाहुआ देश वेषवाणी बुद्धि इन सभों
के सरूप वस्तुको आचरण करते संते इस संसारमें

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
१३९

136

विचरै १८ बुद्धिको बढाने वाला जो शास्त्रहै अर्था॰
त् वैदिक और ज्योतिष वैयाकरन मीमांसा स्मृति पु
राण न्याय आदि धनको देनेवाला जो शास्त्रहै अ॰
र्थात् शुक्राचार्यका और बृहस्पतिका बनाया हित
करनेवाला जो शास्त्रहै अर्थात् वैदिक और ज्योति

बुद्धिवृद्धिकराण्याशु धनानि
च हितानि च नित्यं शास्त्राणि
वेक्षेत निगमांश्चैव वैदिका
न् १९ यथा यथा हि पुरुषः
शास्त्रं समधिगच्छति तथा
तथा विजानाति विज्ञानं चा
स्य रोचते २० ऋषियज्ञं देवं
यज्ञं भूतयज्ञं च सर्वदा नृय
ज्ञं पितृयज्ञं च यथाशक्ति
न हापयेत् २१ ॥

ष इनसबको देखना वेदार्थको जनानेवाला जो॰
ग्रंथहै उसको भी नित्यही देखना १९ जैसा जैसा॰
शास्त्रका अभ्यास करताहै पुरुष तैसा विशेषकरके
जानताहै और ज्ञानभी रुचताहै उसपुरुषको २० ऋ
षियज्ञ देवयज्ञ भूतयज्ञ मनुष्ययज्ञ पितृयज्ञ इनस
बयज्ञोको यथाशक्ति नछोडै २१ ॥

यज्ञशास्त्रके जानन हार जो पुरुषहै और इन य-
ज्ञोंके करनेकी इच्छा नही करतेहै सो निस्पृही -
इंद्रियोंमे होम करतेहै ११ वाणी और प्राण इन दो
नों मे अक्षय यज्ञसिद्धको देखते हुए एक पुरुष

एता नेके महायज्ञान् यज्ञ
शास्त्र विदो जनाः अनीहमा
नाः सततं मिंद्रियेष्वेव जुह्व
ति ११ वाच्येके जुह्वति प्रा-
णे प्राणेवाचे च सर्वदा ज्ञान
मूले क्रियामेषां पश्यंतो -
ज्ञान चक्षुषा १४ ॥

प्राणको वाणीमें होम अर्थात् संपादन करतेहै औ
र वाणी प्राणमें होम अर्थात् संपादन करमेहै ११
संपूर्ण क्रियाका जड ज्ञानहै ऐसा ज्ञानरूपी नेत्रसे
देखते हुए एक पुरुष ज्ञान होकरके इन यज्ञोंसे यज्ञ

म० स्मृ०टी० भा० १३१

137

नकरते हैं २४ सूर्योदयमें होमकरना इसपक्षमें दि
नके आदि अर्थात् सायंकालमें होम करना सूर्यके
अनुदयमें होमकरना इसपक्षमें दिनके आदि अर्था
त् सायंकालमें रात्रिके अंत अर्थात् प्रातःकालमें
होमकरना अथवा सूर्य उदयमें होमकरना इस
पक्षमें दिनके अंतमें होम करना सूर्यके अनुदयमें
होम करना इसपक्षमें रात्रिके आदिमें रात्रिके अं०

अग्निहोत्रं च जुहुया दाद्यंते
द्युनिशो सदा दर्शेन चार्द्ध मा
सांते पौर्णमासेन चैवहि २५
सस्यांते नवसस्येष्टा तथर्त्वं
ते द्विजोध्वरैः पशुना त्वयन०
स्यादौ समांते सौमिकै र्मखैः
२६ नानिष्ट्वा नवसस्येष्ट्या प
शुना चाग्निमान्द्विजः नवान्न
मद्यान्मांसंवा दीर्घमायु र्जि
जीविषु २७ ॥

तमें होम करना अमावस्यामें और पौर्णमासीमें हो
मकरना २५ नवीन अन्नके उत्पत्ति समयमें नवस
स्य इष्टि करके होमकरना ऋतुके अंतमें चातुर्मा०
स्य यज्ञकरके होमकरना दोनो अयनमें पशुकरि
के होमकरै वर्षके अंतमें अग्निष्टोमादि यज्ञको करै
२६ बडी आयुषका इच्छा करनेवाला जो अग्निहोत्री ब्रा
ह्मण है सो नवीन अन्नसे यज्ञको विना किए उस न
वान्नको और मांसको भोजन करै २७

नवीन अन्नसे और पशुसे जो अग्निहोत्र नहीं हुई सोन वान्न और मांसके भोजन करने वालेके घरोंको भोजन करनेकी इच्छा करतीहैं १८ आसन भोजन शय्या जल मूल फल इन सभोंमेंसे कोई एकवस्तुमें यथाशक्ति विना पूजाके पापरूप अतिथि गृहस्थके गृहमें वासन करने पावे ३९ पाषण्डी अर्थात

नवेना नर्चिता ह्यस्य पशुहव्ये न चाग्नयः प्राणाने वात मि॰ छंति नवान्न मिष गार्द्धिनः १८ आसना शन शय्याभि रद्भि र्मूल फलेनवा न कस्यविद्व॰ से द्गृहे शक्तितो नर्चितो तिथि ३९ पाषण्डिनो विकर्मस्थान्वै डाल व्रतिकान् शठान् हैत॰ कान्बक वृत्तींश्च वा मात्रेणा पि नार्चयेत ३॰ ॥

वेद विरुद्ध व्रत और चिन्हके धारण करनेवाले नि॰ षिद्ध जीविकासे जीनेवाले वैडाल व्रतिक जिसका लक्षण आगे कहेंगे वेदमें जिसकी श्रद्धा नहींहै विरोधी तर्कसे व्यवहार करनेवाले ये सब अतिथि कालमें प्राप्तहों तो वाणी मात्रसेभी इन्होंके पूजा नकरे परंत भोजनको तो देवे ३॰ ॥

वेदमें पक्का और ब्रतमें पक्का अथवा दोनोंमे पक्का जो गृहस्थहै उसका पूजा हव्य और कव्यसे करे विपरीतको वर्जन करे जो पापका नहीं करतेहैं ब्रह्मचारी पाखंडी सन्यासी आदि इन्होंको शक्तिपूर्वक अन्नको गृहस्थदेवै अपने कुटंबोंको भोजन देके जो बचे

वेदविद्या व्रतस्नातान् श्रोत्रियान् गृहमेधिनः पूजयेद्धव्यकव्येन विपरीतांश्च वर्जयेत् ३१ शक्तितो पचमानेभ्यो दातव्यं गृहमेधिना संविभागश्च भूतेभ्यो कर्तव्यो नुपरोधितः ३२ राजतो धन मन्विच्छे त्संसीदे स्नातकः क्षुधा याज्यांते वासिनो र्वापि नत्वन्यत इति स्थितिः ३३ ॥

अन्न जल आदि इससे हल आदि जितने प्राणीहै तिन्हू सबको जलदेवै ३२ स्नातक जो गृहस्थहै सो क्षुधाकरके दुःखितहो तो राजा यजमान विद्यार्थी इन सभोंसे धनकी इच्छा करे औरसे नहीं यह शास्त्रकी मर्यादाहै ३३ ॥ ॥

समर्थ जो स्नातक गृहस्थ है सो क्षुधा करके किसी
प्रकारसे दुःखित नहोवे विभव रहत संते जीर्ण औ
र मलवस्त्र वस्त्रसे न रहै ३५ वेदाभ्यासमें और अपने
हित कर्ममें नित्ययुक्त रहै है और केश नख दाढी ३

न सीदेत्स्नातको विप्रः क्षुधा
शक्तः कथंचन नजीर्णमल
वद्वासा भवेच्च विभवे सति ३
५ क्लृप्त केश नख श्मश्रुर्दा
न्तः शुक्लाम्बरः शुचिः स्वाः
ध्याये चैव युक्तः स्यान्नित्य
मात्महितेषु च ॥ वैणवीं
धारयेद्यष्टिं सोदकं च कमं
डलुम् यज्ञोपवीतं वेदं च
शुभे रौक्मे च कुण्डले ३६ ।

न्हको छोटे किए रहै है स्वेतवस्त्र पहिरे रहै है पवित्रः
तासे रहै है इंद्रियोंके निग्रह किये रहै है ३५ वांसकी
लाठी जल सहित कमंडलु यज्ञोपवीत सुंदर सुव
र्णके दो कुंडल वेद इन सबको धारण करे ३६ ॥

जलमेंनदेखे

म॰ स्मृ॰टी॰ भा॰ १३९ उदयकाल अस्तकाल मध्याह्नकालमें सूर्यको नदेखे
राहुकरिके ग्रस्तहो तो भी नदेखे ३७ बछरुके बांधने
की रसरीको लंघन नकरे वृष्टिहोत संते नधावे ज॰
लमें अपने रूपको नदेखे यहशास्त्रमें निश्चयहै ।

139

नेक्षेतोद्यंतमादित्यं नास्तं यां
तं कदाचन नोपसृष्टं न वारि
स्थं न मध्यं नभसो गतम् ३७
न लंघयेद्वत्सतंत्रीं न प्रधावे
च्च वर्षति नचोदके निरीक्षे
त स्वरूपमिति धारणा ३८
मृदंगां दैवतं विप्रं घृतं मधुं
चतुष्पथम् प्रदक्षिणानि
कुर्वीत प्रज्ञातांश्च वनस्पती
न् ३९

३८ कहीं जाने लगें और संमुखमें उखाड़ी माटी गौ
देवता ब्राह्मण घृत मधु चौर[illegible] जाना हुआ वृक्ष॰
ये सब मिलें तो इन्होंके प्रदक्षिण करते हुए गमन करै ३९ ॥ ॥

प्रति मतहै तोभी रजस्वला स्त्रीमे गमन नकरे समान शय्यापर स्त्रीके साथ शयन नकरे ४० रजस्वलास्त्रीमे जो गमन करताहै इसकी बुद्धि तेज बल नेत्र आयुष ये सब हीन होजाते हैं ४१

नोपगच्छेत् प्रमत्तोपि स्त्रियमार्तवदर्शने समानशयने चैव न शयीत तया सह ४०
रजसाभिप्लुतां नारीं नरस्य ह्युपगच्छतः प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रहीयते ४१
तां विवर्जयतस्तस्य रजसा समभिप्लुताम् प्रज्ञा तेजो बलं चक्षुरायुश्चैव प्रवर्द्धते ४२ ॥

रजस्वला स्त्रीमें जो गमन नही करताहै इसकी बुद्धि तेज बल नेत्र आयुष ये सब बढते है ४२ स्त्रीके साथ भोजन न करना और स्त्री भोजन क

म॰ स्मृ॰टी॰ भा॰ ४४॰

रतीहो छींकतीहो जंभातीहो सुखसे बैठीहो तो उ
सको नदेखना ४३ आंखोमें अंजनको लगातीहो अं
गोमे उबटनको लगातीहो नंगीहो विआतीहो तो
उसको नदेखे जिस ब्राह्मणको तेजका कामनाहै

140

नाश्नीयाद्भार्यया सार्द्धं नैना
मीक्षेत चाश्नतीम् क्षुवतीं जृ
म्भमाणांवा नचासीनां यथा॰
सुखम् ४३ नांजयंतीं स्वके ने
त्रे नचाभ्यक्तामनावृताम् न
पश्येत्प्रसवंतीञ्च तेजस्कामो
द्विजोत्तम ४४ नाद्यादेक
वासा ननग्नः स्नानमाचरेत्
न मूत्रं पथि कुर्वीत नभस्म
नि नगोव्रजे ४५ ॥

सो ४४ एक वस्त्रको धारण किए हुए भोजनको
न करै नंगा हुआ स्नानको न करै पैंडा गली गौ॰
का स्थान इन सबमें न मूतै ॥

जोता खेत जल अग्निके अर्थ किया जो ईंठका समूह पर्वत प्रमाण देवतोंका गृह छोटे छोटे कीड़ोंसे ढेर करी हुई जो माटी इन सबोंमे न मूते और न विष्ठाक रै ४६ जीव सहित जो गड्ढाहै और उसमें और गमन

न फालकृष्टे नजले नचित्यां
नचपर्वते नजीर्णदेवायतने
नवल्मीके कदाचन ४६ नस
सत्वेषु गर्तेषु न गच्छन्नापि
च स्थितः न नदीतीर मासा-
द्य नच पर्वत मस्तके ४७
वाय्वग्नि विप्र मादित्य मपः
पश्यंस्तथैवगाम् न कदाच
न कुर्वीत विण्मूत्रस्य विस
र्जनं ४८ ॥

करते हुए खड़े हुए और नदीका तीर पर्वतका मस्तक अर्थात् ऊंचा शृंग इसमें भी इन दोनों कर्मों को न करै ४७ अग्नि सूर्य जल ब्राह्मण गौ वायु इन सभोंके देखते हुए इन दोनों कर्मोंको न करै ४८

म॰ ष्ठा पत्ता तृण काट ढेला आदिसे भूमिको ढांप
स्मृ॰टी॰ के और शिरको बांधिके सब अंगोंको ढांपके मौन
भा॰ होके मूत्र और विष्ठाकरै ४९ दिनमें प्रातःकाल सा
१४१ यंकालमें उत्तर मुखहोकर और रात्रिमें दक्षिण मुख

141

तिरस्कृत्योच्चरेत्काष्ठ लोष्ठपत्र
तृणादिना नियम्य प्रयतो वा
चं संवीतांगो वगुण्ठितः ४९
मूत्रोच्चार समुत्सर्गं दिवा कु॰
र्यादुदङ्मुखः दक्षिणाभिमु
खोरात्रौ संध्ययोश्च यथादि॰
वा ५० छायायामन्धकारेवा
रात्रावहनिवा द्विजः यथा
सुखमुखः कुर्यात् प्राणबाधः
भयेषुच ५१ ॥

होकर मूत्र और विष्ठाका त्याग करै ५० छाया अंध
कार प्राणबाधा इन सबोंमें रात्रिको अथवा दिन॰
को जिस और मुख करनेसे सुखहोवे उस और मुख
कर मूत्र और विष्ठाका त्यागकरै ५१ ॥

अग्नि सूर्य सोम जल ब्राह्मण गो वायु इन सबको देखते हुए मूत्र और विष्ठाका त्याग करनेसे बुद्धि का नाश होताहै ५२ अग्निको मुखसे न फूंकना अग्निमे अपवित्र वस्तुको न डालना और पांवको

प्रत्यग्निं प्रति सूर्यंच प्रति सोमो-
दक द्विजान् प्रति गो प्रति
वातं च प्रज्ञा नश्यति मे हतः
५२ नाग्निं मुखे नोपधमे न्नं-
ग्नां नेक्षेत च स्त्रियम् नामेध्यं
प्रक्षिपे दग्नौ न च पादौ प्रता-
पयेत् ५३ अधस्ता न्नोपदध्या
च्च नचैन मभिलंघयेत् नचै
नं पादतः कुर्य्या न्न प्राण-
बाध माचरेत् ५४ ॥

नंगी स्त्रीको न देखना ५३ पलङ्गके नीचे अग्निको न रखना पांवसे न लंघना प्राण बाधा न करना ५४ ॥

म·
स्मृ·टी·
भा·
१४२

142

सायंकालमें प्रातःकालमें भोजन गमन सूतना इन
तीनों कर्मोंकोंनकरना भूमिको रेखा करके न लिखना
धारण किया जो फूलकी मालाहै उसको अपने शरी
रसे आप ननिकालना किंतु दूसरा कोई निकालैहै ५५
जलमें मूत्र विष्टा खखार अपवित्रमें लिपे हुई कोई

नाश्नीयात्संधिवेलायां न ग·
च्छेन्नापि संविशेत् न चैव प्रलि
खेद्भूमिं नात्मनोपहरेत्स्रजं
५५ नाप्सु मूत्रं पुरीषं वा ष्ठीव
नं वा समुत्सृजेत् अमेध्यलि·
प्तमन्यद्वा लोहितं वा विषा·
णि वा ५६ नैकः स्वपेच्छून्य·
गेहे शयानन्न प्रबोधयेत् नो
दक्ययाभिभाषेत यज्ञंगच्छे
न्नचावृतः ५७ ॥

वस्तु रुधिर विष इन सबको नडाले ५६ शून्यमें अके
ला नसोवे विद्या आदि करके अपनेसे बड़ाहो और
सूताहो तो उसको नजगावे रजस्वला स्त्रीसे भाष·
ण नकरै विना बुलाए यज्ञमें न जाय दर्शन के नि·
मित्त जायतो जाय ५७ ॥

अग्निका गृह गौका स्थान ब्राह्मणोंके समीप वेदका पढना भोजनका करना इनसभोंमे दक्षिण हस्तको निकाले ५५ हथको वा जलको पीती गोह्ने तो उ-सको निवारण नकरै और न किसीसे कहै आका

अग्न्यागारे गवां गोष्ठे ब्राह्म-णानां च सन्निधौ स्वाध्याये भोजने चैव दक्षिणं माणिं मुद्धरेत् ५५ न वारयेद्गांधयं-तीं नचाचक्षीत कस्यचित् न दिवीन्द्रायुधं दृष्ट्वा कस्य-चिद्दर्शयेत् बुधः ५९ नाधार्मिके वसेद्ग्रामे न व्याधि बहुले भृशम् नैकः प्रपद्येताध्वानं न चिरं पर्वते वसेत् ६० ॥

ग्राममें ईंद्र धनुषको देखकर किसीको न देखावे ५९ धर्मसे रहित और बहुत व्याधिसे युक्त जो ग्रा मेंहै उसमें वसिन करे अकेला मार्गमे नचले बहु त काल तक पर्वत में न वास करै ६० शूद्रके ग्रा

म॰
स्मृ॰ टी॰
भा॰
१४३

143

ज्यमें और अधार्मिक जन पाखंडी गण चांडालादिका
उपद्रव इन्होंमेंसे कोई एक करके संयुक्त जो ग्राम आ
दि है उसमें वासन करै ॥६१॥ तिल जिसका निकाला गया
अर्थात् पीना आदि उसको न भोजन करै अति भोजन
को न करै अतः प्रातःकालमें अतिसायंकालमें भोजन
न करै ॥६२॥ प्रातःकालमें अतिभोजन किया होतो सायंकालमें भोजन ना करे ॥६२॥

न शूद्र राज्ये निवसे न्नाधर्मि
क जनावृते न पाखंडि गणा॰
क्रान्ते नोपसृष्टेऽन्त्यजै र्नृभिः ॥६१॥
न भुंजीतो द्धृतस्नेह नाति सौ॰
हित्य माचरेत् नाति प्रगे ना
तिसाय न्नसायं प्रातराशितः
॥६२॥ न कुर्वीत वृथा चेष्टां न वा
र्यं जलिना पिबेत् नोत्संगे
भक्षये द्भक्ष्या न्न जातु स्या त्कु
तूहली ॥६३॥

इस लोकमें और परलोकमें अर्थसे रहित जो व्यापार उ
सको न करै अंजलीसे जलको न पीना गोदीपर लड्डू आ
दिको रख करके उसको भोजन न करै विना प्रयोजन
का यह हुआ ऐसा जानने की इच्छा न करै ॥६३॥

नाचना गाना बजाना ताडी ठोंकना कटकटाना
प्रेम सहित गदहा आदिका शब्द करना इन सबको
न करै ६४ कांसके पात्रमें पांवको न धोवे फूटे पा
त्रमें और जिस पात्रमें मनको प्रसन्नता नहो उसमें

न नृत्येदथवा गायेन्न वादि
त्राणि वादयेत् नास्फोटये ·
न्न चक्ष्वेडेन्न च रक्तो विरावये
त् ६४ नपादौ धावयेत् कांसे
कदाचिदपि भाजने न भिन्न
भांडे भुंजीत न भाव प्रति दू
षिते ६५ उपानहौ च वासश्च
धृतमन्यैर्न धारयेत् उपवी
तमलंकारं स्रजं करकमे
व च ६६ ॥ ॥

भोजन नकरै ६५ जूता छाता जनेउ गहना पुष्प
माला कमंडल वस्त्र इन सबको किसीने धारण
कियाहो तो उसको दूसरा कोई धारण नकरै ६६

वे सिखाया हुआ क्षुधा और व्याधिसे पीडित टूटगया
है जिसका सींग आंख खुर पोंछ ऐसे वृषभसे यु०
क्त रथपर चढके गमन नकरै ६७ सिखाए हुए शी
घ्र चलने वाले लक्षणोंसे युक्त वर्ण रूपसे सम्पन्न ऐ
से वृषभसे युक्त रथपर चढके नित्यही गमन करै
और उस वृषभको पैनासे नमारै ६८ प्रातःकाल ती

नाविनीतैर्भजेद्धुर्यैर्न च क्षु
द्व्याधिपीडितैः न भिन्नशृंगा
क्षिखुरैर्न वालधिविरूपितैः
६७ विनीतैस्तु व्रजेन्नित्यमा०
शुगैर्लक्षणान्वितैः वर्णरूपो
पसंपन्नैः प्रतोदेनातुदन्भृशं
६८ बालातपः प्रेतधूमो वर्ज्यं
भिन्नं तथासनम् न छिंद्या०
न्नखलोमानि दन्तैर्नोत्पाटये
न्नखान् ६९ ॥

न मुहूर्त तक सूर्यका घाम और किसी के मतमें कन्या
राशिस्थित सूर्यका घाम जलता हुआ मुरदाका धूआं
टूटा आसन इन सबको वर्जन करै नख और लोमको
नहीं छेदन करै दांतोंसे नखको दांतनसे उखाडैन वा
ला [illegible] करनेवाला अपवित्रतासे रहने वाला ॥

माटी और ढेला को मर्दन न करै नखसे तृणको
न छेदन करै निष्फल कर्मको न करै जिसकर्मके
करनेसे सुखहोनेवाला नहीं है उसकर्मको न क
रै ७० ढेला मर्दन करनेवाला तृण छेदने वाला
नखको दांतसे उखाडन वाला चुगलई करने वा

न मृल्लोष्टं च मृद्नीया न्नछिं
द्या न्करजै स्तृणम् न कर्म
निष्फलं कुर्या द्बहिर्माल्यं
न धारयेत् ७० लोष्टमर्दी तृ
णछेदी नखखादी च योन
रः सविनाशं व्रजत्याशु सूच
को ऽशुचिरेव च ७१ न विगर्ह्य
कथां कुर्या द्बहिर्माल्यं न धा
रयेत् गवां च यानं पृष्ठेन सर्व
थैव विगर्हितम् ७२ ॥

ला अपवित्रतासे रहने वाला शीघ्र नाशको पाता
है ७१ लौकिकवार्तामें अथवा शास्त्रीय वार्तामें सा
भि निवेशकरके अर्थात् चित्त लगाइके अर्थात्
आग्रहकरके कथा न करना केशमें मालाको धार
ण न करना बैलके पीठपर बैठके गमन न करना य

इ सर्वथा वर्जनीय है ७२ ग्राम अथवा गृह यह दोनों आ
वृत हो अर्थात् घेरा हो तो द्वारको छोड़कर लांघिके
उसके भीतर न जाना रात्रिके समय वृक्षके मूलमें न
रहै ७३ पासा कभी न खेलै अपने जूताको अपने हा
थसे एकस्थानसे दूसरेस्थानमे न लेइ जाना किंतु

अद्वारेण च नातीयाद्ग्राम
म्वा वेश्मवावृतं रात्रौ च वृक्ष
मूलानि दूरतः परिवर्जयेत्
७३ नाक्षैः क्रीडेत्कदाचित्तु
स्वयं नोपानहौ हरेत् शयन
स्थो न भुंजीत न पाणिस्थं न
चासने ७४ सर्वं च तिलसम्ब
द्धं नाद्यादस्तमिते रवौ न च
नग्नः शयीतेह नचोच्छिष्टः
क्वचिद्व्रजेत् ७५ ॥

पांवसे लेजाय शय्यापर बैठके और बहुत अन्नको हा
थमें रखके थोड़ा थोड़ा निकालके आसनके ऊपर पा
भोजन पात्रको रखके भोजन न करै ७४ तिलसे मिले
हुए वस्तुको रात्रिमें न भोजन करै नंगा होके न सो
वे जूठा हुआ कहीं न जाय ७५ ॥

गीला पांव करके भोजन करना ओर गीला पांव
करके सोना नही ओर जो देशनेत्रसे देखानही ग-
याहै ओर मरण आदिका संदेह जिस स्थानमें है
उसदेशमें कभीन जाना अपने मूत्रको ओर वि

आर्द्रपादस्तु भुंजीत नार्द्रपाद
स्तु संविशेत् आर्द्रपादस्तु
भुंजानो दीर्घमायुरवाप्नुया
त् ७९ अचक्षु विषया न्दुर्गे
नप्रपद्येत कर्हिचित् न वि-
ण्मूत्र मुदीक्षेत न बाहुभ्यां
नदींतरेत् ८० अधितिष्ठे न्न
केशांस्तु न भस्मास्थि कपा-
लिकाः न कर्पासास्थि नतु-
षान् दीर्घमायु र्जिजीविषुः
८१

ष्ठा को नदेखना नदीको बाहुसे नतरना ८० बहु
त दिन जीनेके इच्छा करने वाला जो पुरुषहै
सो केश भस्म हाड फूटा टूटा माटीके पात्रका टु
कडा बन डर भूसा इन सभोंपर खडा न रहे ८१ ॥

दूसरे ग्रामके रहनेवाले पतित चांडाल पुल्कश अ
र्थात् निषादसे शूद्रोंमे उत्पन्न धन आदिसे गर्वित ।
मूर्ख धोबी आदि अन्त्यावसायी अर्थात् चांडालसे नि
षादि स्त्रीमें उत्पन्न इन्होंके साथ एक वृक्षकी छाया
में नरहै ७९ शूद्रको मति न देना दाससे भिन्न जो

न संवसेच्च पतितै र्नचाण्डालै
र्नपुल्कशैः नमूर्खै र्नावलिप्तै
श्च नान्त्यै र्नान्त्यावसायिभिः
७९ न शूद्राय मतिं दद्या न्नो
च्छिष्टं न हविष्कृतं न चास्यो
पदिशेद्धर्मं नचास्य व्रतमा
दिशेत् ८० योह्यस्य धर्ममा
चष्टे यश्चैवादिशति व्रतम्
सोऽसंवृतं नाम तमः सह
तेनैव मज्जति ८१ ॥

शूद्रहै उसको जूठा अन्न देना जिस हविको एक दे
शका होम हुआहै और जो बाकी रह गयाहै उस
को शूद्रको न देना धर्म और व्रत इसका उपदेश ।
शूद्रको नकरना ८० जो पुरुष शूद्रको धर्म और व्रत
का उपदेश करताहै सो उस शूद्र सहित असंवृत ना
म नरकमे जाताहै ८१

मिले हुए दोनों हाथसें अपने शिरको न खुजलाना
न्हा हुआ पुरुष अपने शिरको न छूवे शिरको
छोड़के अर्थात् गले तक स्नानको न करे ८२ कु
पसे अपने शिरको और केशको प्रहार न करे औ

न संहताभ्यां पाणिभ्यां कंडू-
येदात्मनः शिरः न स्पृशेच्चै
तदुच्छिष्टो नच स्नायाद्वि-
ना ततः ८२ केशग्रहान्प्र-
हारांश्च शिरस्येतानि वर्जये
त् शिरः स्नातश्च तैलेन ।
नांगंकिंचिदपि स्पृशेत् ८३
न राज्ञः प्रतिगृह्णीयादरा-
जन्य प्रसूतितः सूना चक्र
ध्वजवतां वेशेनैवच जीवि
तां ८४ ॥

र दूसरे कोभी शिरमें तेल लगायके स्नान करे
फेर दूसरे अंगमें तेलको न लगावे ८३ जो राजा
क्षत्रिय नहींहै इससे प्रतिग्रहको न करै कसाई
तेली कलार इनसे प्रतिग्रहको न करै ८४ ॥

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
१४७

वेश्याकी जीविकासे जीनेवाले जो पुरुषहैं किम्वा स्त्रीहै उससे प्रतिग्रहको नलेवे ८५ दश कसाईके समान तेलीहै दशतीलेके समान कलावहै दशक लावके समान वेश्याहै दश वेश्याके समान राजा

147

दशसूना समंचक्रं दशचक्र समोध्वजः दश ध्वज समो वेशो दशवेश समोनृपः ८५ दश सूना सहस्राणि यो वा हयति शौनकः तेन तुल्यः स्मृतो राजा घोरस्तस्य प्रतिग्रहः ८६ योराज्ञः प्रतिगृह्णीया ल्लुब्धस्योच्छास्त्रवर्तिनः सपर्य्यायेन यातीमा न्नरका नेकविंशतिम् ८७ ॥

है ८६ जो कसाई अपने लिये दश हजार जीवको मारताहै उसको समान राजाहै इसलिये उसका प्रतिग्रह घोरहै ८७ ॥

लोभी और शास्त्रका अतिक्रम करने वाला जो रा॰
जाहै उससे जो पुरुष प्रतिग्रह करताहै सो क्रम॰
से आगे जो एक्कीस प्रकार नरक कहेंगे उसमें जा
ताहै २८ तामिस्र अंधतामिस्र महारौरव नरकका

यो राज्ञः प्रतिगृह्णीयात् लुब्धस्यो
च्छास्त्र वर्तिनः सपर्य्यायेण ।
यातीमान्नरकानेकविंशति
म् २८ संजीवन म्महावीचिं
तपनं संप्रतापनं संघातंक
सकाकोलं कुड्मलं प्रतिमू॰
र्तिकं २९ लोहशंकु मृजीषं
च पंथानं शाल्मलीं नदीम्
असिपत्रवनं चैव लोहदार॰
क मेवच ३० ॥

लहरव महा नरक २९ संजीवन महावीचि तपन
संप्रतापन संघातक काकोल कुड्मल प्रतिमूर्ति
क २९ लोह शंकु मृजीष शाल्मली नदी असिप
त्र वन लोहदारक ३० इसबातको जानने वाले॰

म०
स्व०टी०
भा०
१४८

इसबातका जानने वाले और परलोकमें कल्याणको इच्छाकरने वाले वेदके पढने वाले जो ब्राह्मणहैं सो राजासे प्रतिग्रहको नही करते ९१ प्रहर रात्रि रहते उठके धर्म और अर्थ इन दोनोंका चिंतनकरै य मे अर्थका जड जो शरीर क्लेशहै इसको भी चिंतन

एतद्विदंतो विद्वांसो ब्राह्मणा ब्रह्मवादिनः न राज्ञः प्रतिग्र ह्णंति प्रेत्यश्रेयोभिकांक्षिणः ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानु चिंतयेत् कायक्लेशां श्च तन्मूलान्वेद तत्वार्थ मेव च ९२ उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समाहितः पूर्वां संध्यां जपंस्तिष्ठेत्स्वकाले चा परां चिरं ९३ ॥

करै वेदका जो तत्व अर्थहै ब्रह्मकर्म इसको चिंतन करै ९२ उठकरके आवश्यक कर्मोको निश्चिंत होके शौच करना अपने कालमें प्रातःकाल सायंकालकी संध्यामें बहुत कालतक जप करनाहै ९३ ॥

बड़ी संध्या करनेसे ऋषिलोगों ने बड़ी आयुष
को पाया और बुद्धि यश कीर्ति ब्रह्म तेज इन ।
सबको पाया ९४ विधिसे श्रावणी अथवा भाद्र
पदीमें उपाकरण कर्मकरके उद्योगको प्राप्त हो
कर साढे चारमास तक वेदको पढे ९५ साढे चा
र मासके उपरांत पुष्य नक्षत्रमें ग्राममें बाहर

ऋषयो दीर्घ संध्यत्वा दीर्घ-
मायु रवाप्नुयुः प्रज्ञां यशश्च
कीर्तिंच ब्रह्मवर्च समेवच
९४ श्रावण्यां प्रौष्ठपद्यां वा
प्युपाकृत्य यथाविधिः यु-
क्तश्छंदांस्यधीयीत मासान्वि-
प्रोर्द्ध पंचमान् ९५ पुष्येतु
छंदसां कुर्याद्बहि रुत्सर्ज
नं द्विजः माघशुक्लस्य वा
प्राप्ते पूर्वाह्णे प्रथमे हनि ९६

जाके छंदका उत्सर्ग अर्थात् त्याग करै जो श्राव-
णीमें उपाकरन किये है सो और जो भाद्रपदमें उपा
करण किये हो सो और जो भाद्रपदमें उपाकरण
किये है सो माघशुक्ल प्रतिपत में पूर्वाह्नकाल अ-
र्थात् प्रातःकालमें मध्याह्नतकमें उत्सर्जन करै
९६

इस रीतिसे ग्रामके बाहर यथाशास्त्र उत्सर्ग करके
पक्षिणी रात्रि अर्थात् उत्सर्गका दिन और आनेवा॰
ला दिन यह दोनों पक्षकी नाईंहै जिस रात्रिका प
क्षी जो बीचके रात्रि तक वेदको न पढ़ना अथवा
उत्सर्गका दिन रात्रि तक न पढ़ना इसके उपरा

यथाशास्त्रं तु कृत्वैव मुत्सर्गं
छन्दसां बहिः विरमेत्पक्षिणीं
रात्रीं तदेवैक महर्निशं ९७ अ
तः ऊर्ध्वं तु छन्दांसि शुक्लेषु नि
यतः पठेत् वेदांगानि च सर्वा
णि कृष्णपक्षेषु सम्पठेत् ९८
नाविस्पष्ट मधीयीत न शूद्रज
न सन्निधौ न निशान्ते परिश्रा
न्तो ब्रह्माधीत्य पुनः स्वपेत्
९९ ॥

न नियमसे शुक्लपक्षमें वेदको पढ़े कृष्णपक्षमे शा
स्त्रको पढ़े ९८ जिसमें अक्षर स्पष्ट जाने जाय ऐसा प
ढ़े शूद्र जनके समीपमे न पढ़े रात्रिके चौथे प्रहरमें
वेद पढ़नेसे थकि जाय तो फेर सोवे नही ९९ ॥

जैसी विधि कही है उस विधिसे युक्त होकर नित्य॰
ही वेदको दोनों भाग अर्थात् मंत्र और ब्राह्मणको
पढ़े १०० आगे जो कहेंगे अनध्याय उसमें गुरु औ
र शिष्य ये दोनो वेदका पढ़ना और पढ़ाना नक

यथोदितेन विधिना नित्यं
छन्दस्कृतं पठेत् ब्रह्मछन्द
स्कृतं चैव द्विजो युक्तोह्यना
पदि १०० इमान्नित्य मनध्या॰
या नधीयानो विवर्जयेत् अ
ध्यापने च कुर्वाणः शिष्याणां
विधिपूर्वकं १०१ कर्णश्रवे नि
ले रात्रौ दिवा पांसु समूहने
एतौ वर्षास्व नध्यायाव ध्या
यज्ञाः प्रचक्षते १०२ ॥

रे १०१ रात्रिसमय कानमें वायुका शब्द जानाजाय
और दिनमें धूली उड़ती हो तो उसदिन अनध्याय क
रना वर्षाकालमें इसबातको अध्याय जानने वाले

म०
स्मृ० टी
भा०
१५०

ने कहीहै ९२ विजलीका चमकना गर्जना वर्षाहो और वडा लूक आकाशसे गिरै तो इस समयसे दूसरे दिन इसीसमयतक अनध्यायहै इसवातको मनुजी ने कहाहै विजलीका चमकना गर्जना वर्षा ये तीनौ सायंकालमे तोहो वर्षाकालमें अनध्याय जानना सर्वदा नही क्यौंकि वर्षाकालमें तो ये सब होती

विद्युत्स्तनित वर्षेषु महोल्का नां च संप्लवे आकालिक मन ध्याय मेतेषु मनु रब्रवीत ९२ एतांस्त्वभ्युदितान्विद्या द्यदा प्रादुष्कृताग्निषु तदा विद्याद नाध्याय मनृतौ चाभ्रदर्शने ९४ निर्घाते भूमि चलने ज्योतिषां चोपसर्जने एतानाकालिका न्विद्या दनध्याया नृता वपि ९५ ॥

है संध्याकालमें हो तब अनध्याय होतीहै वर्षाकालसे भिन्नकालमें मेघ देखपडे तो अनाध्याय करना ९४ अंतरिक्षमें भयानो उत्पात का शब्द भूकंप चंद्र सूर्य तारा इन सभौंका उपसर्ग अर्थात् उपद्रव इन्होंमे आकालिक अर्थात् जिस समयमें ये सबहो उससे दूसरी दिन उसी समयतक अनध्याय सब ऋतु

में जानना ९५

प्रातःकालमें संध्यामें होमके अग्नि लकड़ीसे मथन क
रके प्रकट भई और उसी समयमें बिजलीका चमकना
और गर्जना भया परंतु वृष्टि न भई तो सज्योतिः अर्था
त् दिनभर अनध्यायहै और सायं संध्याकालमें तीनों
पूर्व कथित वस्तुहो तो रात्रिभर अनध्याय जानना ।
अकालिक नजानना १०६ ग्राममें और नगरमें तो नि

प्राडष्कृतेष्वग्निषुतु विद्युत्स्तनि
त निस्वने सज्योतिः स्यादनध्या
यः शेषे रात्रौ यथा दिवा १०६
नित्यानध्याय एवस्या द्ग्रामेषु
नगरेषु च धर्म नैपुण्य कामा
नां पूति गंधे च सर्वदा १०७ अं
तर्गत शवेग्राम वृषलस्य च
सन्निधौ अनाध्यायो रुद्यमान
समवाये जनस्य च १०८ ॥

त्यही अनध्यायहै और दुर्गंधमें भी अनध्याय करना
जिनको धर्मकी निपुनता कामनाहै उसको अनध्या
य जानना १०७ ग्राममें मुरदा रहै तो अनध्याय हो-
तीहै अधार्मिक के समीपमें रोदनमें दूसरे कार्य-
के लिये बहुत जनोंके मिलापमें अनध्याय जान-
ना १०८ ॥

म·
स्मृ· टी·
भा·
१५१

151

जल अर्द्धरात्र विष्ठा मूत्र त्याग इसमें मनसे भी वेदका
चिंतन नकरना जूठे हुए और श्राद्धान्न भोजन करके
भी वेदका न पढ़ना एकोदिष्ट श्राद्धका निमंत्रण ग्र
हण करके निमंत्रण दिनसे तीन दिन तक वेदको

उदके मध्यरात्रे च विण्मूत्रस्य
विसर्जने उच्छिष्टः श्राद्धभुक्
चैव मनसापि नचिंतयेत् १९
प्रतिगृह्य द्विजो विद्वा नेको·
दिष्टस्य केतनं त्र्यहं न कीर्त·
येद्ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके
१०· यावदेकानुदिष्टस्य गंधो
लेपश्च तिष्ठति विप्रस्य विदु
षो देहे तावद्ब्रह्म न कीर्तये
त् १११ ॥

पढ़ना राजाके सूतकमें और चंद्र सूर्य ग्रहणमेंभी
१०· जब तक एकोदिष्ट श्राद्धका गंध लेप देहमें रहै
तब तक वेदको न पढ़ै १११ ॥

मांस और सूतकान्न इन दोनोंमे कोईको भोजन क
रके और सूते हुए आसन परपांवकोराखे हुए दो॰
नोंकी नीचे किए हुए वेदको न पढना ११२ कृषि
रा बाणका शब्द दोनों संध्या अमावस्या चतुर्दशी
पूर्णिमासी अष्टमी इन सभी मे वेदको न पढना

आयानः प्रौढपादश्च कृत्वा चै
वाव सक्थिकाम् ना धीयी॰
त्वा मिषं जग्ध्वा सूतकान्नाद्य
मेवच ११२ नीहारे बाणशब्देच
संध्ययो रेव चोभयोः अमाव
स्याः चतुर्दश्याः पौर्णमास्या
ष्टकासुच ११३ अमावस्या गु
रुं हंति शिष्यं हंति चतुर्दशी
ब्रह्माष्टका पौर्णमासी तस्मा
नाः परिवर्जयेत् ११४ ॥

११३ अमावस्या गुरुका नाश करती है चतुर्दशी शिष्य
का नाश करती है अष्टमी पौर्णमासी ये दोनो वेदका
नाश करती है इस लिये इसको वर्जन करना ११४

धूलीकी वृष्टि दिशाका दाह सिआरिनी कुत्ता गद॰
हा ऊंट इन्होंका रोना पंक्ति इन सभोंमें न पढना
११५ श्मशान ग्राम गौका स्थान इन्होंके समीपमें
और मैथुन समयके वस्त्रको पहिरके और श्राद्धके

पांसु वर्षे दिशांदाहे गोमायु
विरुते तथा श्वखरोष्ट्रेच रुव॰
ति पंक्तौ चन पठेद्द्विजः ११५
नाधीयीत श्मशानांते ग्रामां
ते गोव्रजेपिवा वसित्वा मैथु
नंवासः श्राद्धिकं प्रतिगृह्य
च ११६ प्राणिवा यदिवा प्रा॰
णि यत्किंचिच्छ्राद्धिकं भवे
त् तदालभ्याप्यनध्यायः पा
ण्यास्योहि द्विजः स्मृतः ११७

अन्न ग्रहण प्रतिग्रह करके न पढना ११६ प्राण सहित जो
वस्त्र अथवा प्राण रहित जो वस्त्र अथवा प्राणरहित जो
वस्त्र श्राद्धकी है उसको ग्रहण करके अनध्याय करना
क्योंकि ब्राह्मण पाण्यास्य अर्थात् उसका मुखहाथ है ११७

चोरोंसे उपद्रवके प्राप्त जो ग्राम है उसमें और अग्निके
दाहमें अद्भुतकर्मके देखनेमें आकालिक अनध्या
य जानना ११८ उपाकरणमें और उत्सर्गमें त्रिरात्र अ
ष्टकामें एकदिन रात ऋतुके अंतमें एकदिन रात
ऋतुके अंतमें एकदिन रात्र अनध्याय करना इस

चौरैरुपप्लुते ग्रामे संभ्रमे चा॰
ग्निकारिते आकालिक मनध्या
यं विद्यात्सर्वाद्भुतेषु च ११८ ॰
उपाकर्मणि चोत्सर्गे त्रिरात्रं ॰
क्षेपणं स्मृतं अष्टकासु त्वहो
रात्रं ऋत्वंतासु च रात्रिषु ११९
नाधीयीताश्वमारूढो न वृक्षं
न च हस्तिनम् न नावं न ख
रं नोष्ट्रं नेरिणस्थो न यानगः
१२०

बातको उसके लिये जो कहा है जिसको धर्मकी नि
पुणता कामना है और पहिले जो कहि आए हैं उत्स
र्गमें पक्षिणी सो दूसरे को जानना इस लिये पुनः क॰
कि न होइ ११९ घोड़ा वृक्ष हाथी नौका गदहा ऊंट उस
र भूमि सवारी इन्होंपर स्थित होके न पढना १२० ॥

विवाद कलह संग्राम अजीर्ण वमन अर्थात् उलटी
इन्होंमे अनध्याय जानना भोजन करकेभी न पढना
।। अति वायु चलनेंमे शरीरसे रुधिर निकलनेमे शा
स्त्रसे घावहोनेमें अतिथिकी विना आज्ञामें अनध्या

न विवादेन कलहे न सेनायां
न संगरे नभुक्तमात्रे नाजीर्णे
न वमित्वा न सूतके ।। अ
तिथिं चा नअनुज्ञाप्य मारुते वा
ति वाष्टशमन रुधिरे च स्रुते गा
त्रा शस्त्रेणच परिक्षते ।। सा
मध्वना वृग्यजुषी नाधीयीत
कदाचन वेदस्याधीत्य वाप्यन्त
मारण्यक मधीत्य च १२३ ।।

य करना ।। सामवेदको सुनके ऋग्वेदको और य
जुर्वेदको न पढे वेदका अंत और आरण्यक प्रकर
ण इन दोनोंमें से कोई एकको पढके अनध्याय क
रना १२३ ।।

ऋग्वेदका देवता देवहैं यजुर्वेदका देवता मनुष्यहैं
सामवेदका देवता पितरहैं इसलिये सामवेदका शब्द
अपवित्रहै २४ इस बातके जाननेवाले जो पुरुषहैं
सो नित्यही तीनों वेदोंका सारभूत प्रणव अर्थात्
ॐकार व्याहृति अर्थात् भूः भुवः स्वः इत्यादि गाय॰

ऋग्वेदो देवदैवत्यो यजुर्वेद
स्तु मानुषः सामवेदः स्मृतः
पित्र्यस्तस्मात्तस्याशुचिर्ध्वनिः
२४ एतद्विदन्तो विद्वांसस्त्र॰
यीनिष्कर्षमन्वहं क्रमतः
पूर्वमभ्यस्य पश्चाद्वेदमधी
यते २५ पशुमण्डूकमार्जा॰
र श्वसर्पनकुलाखुभिः अन्त
रागमने विद्यादनध्याय
महर्निशम् २६ ॥

त्री इन तीनोंको क्रमसे पढ़के पीछे वेदको पढ़ते॰
हैं २५ पशु मेंडुक बिलाव कुत्ता सर्प नेउर मूसा इन
सभोंमेंसे कोई एक गुरु शिष्यके बीचमें निकल जा॰
वे तो एक रात्र दिन अनध्याय करना २६ ॥

पढनेकी भूमि अशुद्ध हो और अपनी शरीर अपवित्र हो तो न पढना इन दोनो अनध्यायको यत्नसे त्याग करना स्नातक जो ब्राह्मण है सो ऋतुकालमेंभी अमावस्या अष्टमी पूर्णिमासी चतुर्दशी इन तिथियोंमें ।

द्वावेव वर्जयेन्नित्य मनध्यायौ
प्रयत्नतः स्वाध्याय भूमिं चाशु
द्धा मात्मानं चा शुचि द्विजः
१२७ अमावस्या मष्टमींच पौ
र्णमासीं चतुर्दशीम् ब्रह्मचा
री भवे न्नित्य मप्यृतौ स्नातको
द्विजः १२८ न स्नान माचरे ।
द्भुक्त्वा नातुरो न महानिशि
न वासोभि स्सहाजस्रं नावि
ज्ञाते जलाशये १२९ ॥

ब्रह्मचारी होवे अर्थात् स्त्रीके साथ भोग न करै १२८ भोजन किए हो और आतुर हो तो स्नान न करै वस्त्र सहित बारंबार भी स्नान न करना अर्द्धरात्रमें और जो जलाशय जाना नहीं गया उसमें स्नानको न करै १२९

देवता गुरु राजा स्नातक आचार्य कपिलवर्ण यज्ञ
करनेकी दीक्षाको प्राप्त जो मनुष्य है इन सभोंमें
किसीकी छाया पर इच्छा पूर्वक स्थित न रहै ॥१३०॥
मध्य दिन अर्द्धरात्र दोनों संध्या इन सभोंमे चौरहा

देवतानां गुरो राज्ञः स्नातका
चार्ययोस्तथा नाक्रमेत्काम
त च्छाया बभ्रुणो दीक्षित
स्य च ॥१३०॥ मध्यन्दिनेऽर्द्धरात्रेच
श्राद्धंभुक्त्वा च सामिषम् संध्य
योरुभयोश्चैव न सेवेत चतु
ष्पथम् ॥१३१॥ उद्वर्तनमपस्ना
ने विण्मूत्रे रक्तमेवच श्लेष्म
निष्ठूतवांतानि नाधितिष्ठेत
कामतः ॥१३२॥

स्थानमें नजाना श्राद्धके मांसको भोजन करके भी
चौरहामें न स्थितहो ॥१३१॥ उबटनकी लीकीके ऊपर
स्थान करनेसे जो जल भूमिमें पड़ाहै उसमें विष्ठा
मूत्र वीर्य खंखार थूक वांत अर्थात् उलटी इन्हें का॰

त्व इन सभों पर इच्छा पूर्वक स्थित नहो ॥१३२॥ वैरी वैरी
का सहाई अधार्मिक चोर परस्त्री इन सभोंका सेवन
नकरै ॥१३३॥ परस्त्री सेवनके सदृश आयुषके घटानी
वाली दूसरी कोई वस्तु नहीं है पुरुषको ॥१३४॥ क्ष

वैरिणं नोपसेवेत सहायं चै
व वैरिणः अधार्मिकं तस्करं
च परस्यैव च योषितम् ॥१३३
नहीदृशमनायुष्यं लोके
किंचन विद्यते यादृशं पुरु
षस्येह परदारोपसेवनम् ॥१३४
क्षत्रियं चैव सर्पं च ब्राह्मणं
च बहुश्रुतं नावमन्येत वै
भूष्णुः कृशानपि कदाचन
॥१३५॥

त्रिय सर्प बहुत सुने हुए जो ब्राह्मण ये सब दुर्बल
भी हो तो इन्होंका अपमान न करै सब वस्तुओंसे बढ
नेकी इच्छा करनेवाला जो हो सो ॥१३५॥

ये तीनों अपमान पानेसे दहन कर डालतेहैं इसलिये
ये बुद्धिमान इन तीनोंका अपमान न करै ।३६। दरि-
द्रतासे अपने आत्माका अपमान न करै मरने तक
लक्ष्मीकी इच्छा करतारहै लक्ष्मीको दुर्लभहै न मा-

एतत्त्रयं हि पुरुषं निर्दहेदव-
मानितम् तस्मादेतत्त्रयं नित्यं
नावमन्येत बुद्धिमान् ।३६।
नात्मानमवमन्येत पूर्वाभिर-
समृद्धिभिः आमृत्योः श्रिय-
मन्विच्छे नैना मन्येत दुर्लभा-
म् ।३७। सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूया-
न्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् प्रियं
च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः स-
नातनः ।३८ ॥

नै ।३७। सत्यबोलना प्रिय बोलना सत्यभी हो और
प्रिय न हो तो उसको न बोलना प्रियभी हो और स-
त्य न हो तो उसको भी न बोलना यह नित्य धर्म
है ।३८ ॥

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
१५१

156

अभद्रकोभी भद्र बोलना अथवा भद्र ऐसाही बोल
ना शुष्कवा वैर और विवाद किसीसे न करना भद्र॰
शब्द कल्याणको कहताहै १३९ अतिप्रातःकाल॰
अति मध्याह्नकाल अति सायंकाल गमन नकरना

भद्रं भद्र मिति ब्रूया द्भद्रमि॰
त्येव वा वदेत् शुष्कवैरं विवा
दं च न कुर्यात्केनचित्सह
१३९ नातिकल्यं नातिसायं
नातिमध्यंदिने स्थिते नाज्ञा॰
तेन समं गच्छेन्नैको न वृष॰
लैः सह १४० हीनाङ्गानति
रिक्ताङ्गान् विद्याहीनान्वयो॰
धिकान् रूप द्रव्य विहीनां
श्च जातिहीनांश्च नाक्षिपेत्
१४१

विना जाना मनुष्य और शूद्र इन्होंके साथभी गमन
न करना अकेला न गमनकरना १४० हीन अंगवाला
अधिक अंग वाला मूर्ख वृद्ध रूपहीन जात हीन द्रव्यवाला इन सभों
का निंदा नकरना अर्थात काणाहै उसको काणा कहि
के न पुकारणा १४१

जूठा कुत्ता ब्राह्मण अपने हाथोंसे ब्राह्मण गौ अग्नि इ
नको न छूवे जो आतुर नहींहै और अपवित्रहै सोचं
द्र सूर्य आदि ताराको नदेखे ॥४२॥ कदाचित् जिनको
छूनेको नहीं कहाहै उनको छूवे तो आचमन करके

नस्पृशे त्पाणिनोच्छिष्टो विप्रो
गोब्राह्मणानलान् नचापि ।
पश्ये दशुचिः स्वस्थो ज्योति
र्गणान् दिवि ॥४२॥ स्पृष्ट्वैतानशु
चि र्नित्यं मद्भिः प्राणानुपस्पृ
शेत् गात्राणि चैव सर्वाणि
नाभिंपाणि तलेनतु ॥४३॥
अनातुरः स्वानि खानि न ।
स्पृशेद निमित्ततः रोमाणि
च रहस्यानि सर्वाण्येव विव
र्जयेत् ॥४४॥

हाथमे जल रखके उस जलसे इंद्रियोंको और सब
शरीरको छूवे नाभीको हथीलेसे छूवे ॥४३॥ आतुर
जो नहींहै सो कारण विना अपने इंद्रियोंको न छू
वे एकांतकाजो रोमहै अर्थात् लिंग संबंधी कांख

मंगल आचारसे युक्त रहै भीतर बाहरसे शुद्ध रहै
जितेंद्रियहोके जप और होमको कर आलसको छो
डदेवै ।१४५ इन सब कर्मको करै और शास्त्र कथित
रीतिसे रहै तो देवता और मनुष्य इन दोनोंका कि

मंगलाचारयुक्तः स्यात्प्रयता
त्मा जितेंद्रियः जपेच्च जुहुं
याच्चैव नित्यमग्निमतंद्रितः
।१४५ मंगलाचारयुक्तानां नि
त्यं च प्रयतात्मनां जपतां जु
हुतां चैव विनिपातो न विद्य
ते ।१४६ वेदमेवाभ्यसेन्नित्यं
यथाकालमतंद्रितः तं ह्य
स्याहुः परंधर्ममुपधर्मोन्य
उच्यते ।१४७ ॥

या उपद्रव उस पुरुषको नहो ।१४६ आलसको छो
डकर अपने कालमें नित्यही वेदहीका अभ्यास क
रै यहपरम धर्महै इससे उपधर्महै ।१४७ ॥

निरंतर वेदाभ्यास पवित्रता तप जीवोंका अद्रोह य
ह सब करनेसे पूर्व जन्मकी जातिका स्मरण होता
है ।४८ पूर्वजन्मकी जातिको स्मरण करत फेर वे
दहीका अभ्यास करताहै वेदाभ्याससे निरंतर अन

वेदाभ्यासेन सततं शौचेन त
पसैव च अद्रोहेणच भूतानां
जातिं स्मरति पौर्वकीम् ।४८
पौर्वकीं संस्मरन् जातिं ब्रह्म
वाभ्यस्यते पुनः ब्रह्माभ्यासे
न चाजस्रं मनंतं सुखमश्नु
ते ।४९ सावित्रान् शांति हो
मांश्च कुर्यात् पर्वसु नित्यशः
पितॄंश्चैवाष्टकं स्वर्चे नित्य ।
मन्वष्टकासु च ।५० ॥

त सुखको पाताहै ।४९ पूर्वमें नित्यही गायत्री ।
देवताको होम और अरिष्टनिवारणके लिये शांति ।
होमको करै अष्टका अन्वष्टकामें पितरोंका नि
त्यही पूजा करै ।५० [illegible] ।

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
१५८

158

अग्निके गृहसे दूरदेशमें मूत्र पाद प्रक्षालन जूठ अ
न्न वीर्य्य इन सबको त्यागकरे ॥१५१॥ विष्ठा त्याग देह
प्रसादन अर्थात् शृंगार आदि प्रातःस्नान दन्तधाव
न अंजन देवताका पूजन इन सब कर्मको पूर्वा॰

दूरादावसथा न्मूत्रं दूरात्पा
दाव सेचनं उच्छिष्टं सन्निषे
कं च दूरादेव समाचरेत ॥१५१॥
मैत्रं प्रसादनं स्नानं दन्तधावन
मंजनम् पूर्वाह्ण एव कुर्वीत
देवतानां च पूजनम् ॥१५२॥ दे॰
वतान्यभिगच्छेत धार्मिकां
श्च द्विजोत्तमान् ईश्वरं चैव र॰
क्षार्थं गुरूनेवच पर्वसु ॥१५३

ह्ण काल अर्थात दिनका पूर्वभागमें करना ॥१५२॥ र
क्षाके लिये देवता धार्म्मिक ब्राह्मण गुरु राजा आ॰
दि इन सभोंका दर्शन पूर्वकालमें करना ॥१५३॥

अपने गृहमें आए हुए जो वृद्ध उनको प्रणाम क
रै अपना आसन बैठनेके लिये देव हाथ जोडके
संमुख ठाढ रहै चलने लगें तो पीछे होके आप
भी चले १५४ वेद और धर्मशास्त्र इन दोनोंमे क॰

अभिवादयेद्वृद्धांश्च दद्या च्चैवा
सनं स्वकं कृतांजलि रुपासी
त गच्छतः पृष्ठतोन्वियात्
१५४ श्रुति स्मृत्युदितं सम्यङ्
निबद्धं स्वेषु कर्मसु धर्ममूल
निषेवेत सदाचार मतंद्रितः
१५५ आचारा ल्लभते ह्यायु रा
चारा दीप्सिताः प्रजाः आचा
राद्धन मक्षय्य माचारो हंत्य॰
लक्षणम् १५६ ॥

हो कहा जो भले लोगोंका आचार सो धर्मका कारण है
इसको आलस छोडके नित्यही सेवन करै १५५ आयु
ष अच्छी संतति अक्षय धन ये सब आचारसे मिलता
है और अशुभफलका जाननेवाला जो देहमें स्थित

म॰ स्मृ॰टी॰ भा॰ १५९

अलक्षणोहै उसको आचार नाशकरताहै ॥१५६॥ दुरा
चारी पुरुष लोकमें निंदित होताहै और सर्वकाल
में दुःखी रहताहै थोड़े दिन तक जीताहै ॥१५७॥ जो
सब लक्षणसे हीनहै निंदा किसीकी नही करता॰

दुराचारोहि पुरुषो लोके भ
वति निंदितः दुःखभागी च
सततं व्याधितो ल्पायुरेवच
॥१५७॥ सर्वलक्षण हीनोपि यः
सदाचारवान्नरः श्रद्दधानो न
सूयश्च शतं वर्षाणि जीवं
ति ॥१५८॥ यद्यत्परवशं कर्म त
त्तद्यत्नेन वर्जयेत् यद्यदात्म
वशं तु स्यात् तत्तत्सेवेत य
त्नतः ॥१५९॥

है श्रद्धासे और भले लोगोंके आचारसे युक्तहै सो सौ व
र्षतक जीताहै ॥१५८॥ जो जो कर्म दूसरेके अधीनहै उस
उस कर्मको यत्नसे वर्जन करै और जोजो कर्म अपने
अधीनहै उस उस कर्मोंको यत्नसे सेवन करै ॥१५९॥

परवश्य जो कर्म है सो दुःख है संक्षेपसे सुख दुःख
का यह लक्षण जानो १६० जिस कर्मको करने से पु
रुषके अन्तरात्माको संतोष होवे उस कर्मको
यत्नसे करै विपरीत अर्थात् संतोष न होवे को ।

सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्म
वशं सुखं एतद्विद्या समासे-
न लक्षणं सुखदुःखयोः १६०
यत्कर्म कुर्वतोस्य स्यात्परि-
तोषान्तरात्मना तत्प्रयत्नेन
कुर्वीत विपरीतं तु वर्जयेत्
१६१ आचार्यं च प्रवक्तारं पित
रं मातरं [illegible] गुरुम् न हिं
स्या ब्राह्मणान् गांश्च सर्वां
श्चैव तपस्विनः १६२ ॥

वर्जन करै १६१ आचार्य वेदध्यायका कहने वाला
पिता माता गुरु ब्राह्मण गो तपस्वी इन सभोंमे ।
से कोई एकको भी न मारै १६२ ॥ नास्तिकपना

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
४॰

160

वेद और देवता इन्होंकी निंदा शत्रुता दंभमान क्रो
ध तीक्ष्णता इन सभोंको न करना १६३ क्रोधपाके
दूसरेके मारनेके लिये दंडको नफेंकै और परायेके
शरीरमे ताडनको न करै पुत्र और शिष्य इन दोनों

नास्तिक्यं वेद निंदां च देव-
तानां च कुत्सनम् द्वेषं दंभं च
मानं च क्रोधं तैक्ष्ण्यं च वर्ज-
येत् १६३ परस्य दंडं नोद्यच्छे
त्क्रुद्धो नैनं निपातयेत् अन्य
त्र पुत्रात् शिष्याद्वा शिष्ट्यर्थं
ताडयेत् तौ १६४ ब्राह्मणा
यावगूर्यैव द्विजाति र्वधका
म्यया शतं वर्षाणि तामिस्रे
नरके परिवर्तते १६५ ॥

को सिखानेके लिये ताडनकरै १६४ ब्राह्मण क्षत्रिय
वैश्य ये सब ब्राह्मण वधकी इच्छा करके हथियार
को उठावे और मारे नही तो भी तामिस्रनाम नरक
में सो वर्षतक रहतेहैं ॥ ॥

क्रोधसे इच्छा पूर्वक तृणसेभी ताडन करके पक्कीस जन्म पाप योनि अर्थात् कुत्ता आदिमें उत्पन्न होताहै युद्ध जो नही करताहै ब्राह्मण उसके अंगमें रुधिरको निकालकर अपने बुद्धिके हीनतासे परलोकमें बडे दुःखको पाताहै १८७ युद्धको नही करनेवाले जो ब्राह्मणहै उसके अंगमें शास्त्रसे रु

ताडयित्वा तृणेनापि संरंभा
न्मतिपूर्वकम् एकविंशति ।
मा जातीः पापयोनिषु जा ।
यते १८६ अयुध्यमानस्योत्पा
द्य ब्राह्मणस्यासृगंततः ।
दुःखं सुमहदाप्नोति प्रेत्या ।
प्राज्ञतया नरः १८७ शोणितं
यावतः पांसून् संगृह्णाति
महीतलात् तावतोऽब्दान अ
मुत्रान्यैः शोणितोत्पादकोऽद्यते
१८८ ॥

धिर निकारने वाला परलोकमें महादुःखको पाताहै खड्ग आदि करके ब्राह्मणके अंगसे निकला रुधिर भूमिपर गिराहुआ जितने धूलीका छाणक अर्थात् हर परमाणुपर्यंत को पिंडीकरताहै तितने वर्षतक परलोकमें रुधिर निकालनेवाला कुत्ता सिआर आदिसे भोजन किया जाताहै १८८ ॥

म० स्मृ०टी० भा० १६१

161

इसलिये जाननेवाला कभीभी ब्राह्मणको मारने
के लिये शस्त्रको न उठावे तृणसे भी ताडन नक
रै शरीरसे रुधिरको न निकाले १६९ जो अधार्मि-
कहै और जिसको असत्य धनहै जो नित्यही हिंसा

न कदाचिद्द्विजे तस्मा द्विद्वा
नवगुरे दपि न ताडयेत् तृ-
णे नापि न गात्रा त्स्रावयेद
सृक् १६९ अधार्मिको नरो यो
हि यस्य चाप्यनृतं धनम् हिं
सारतश्च यो नित्यं नेहासौ
सुखमेधते १७० न कदाचिद्द्वि
जे तस्मा द्विद्वानवगुरेदपि न
ताडयेत् तृणेनापि नगात्रात्
स्रावयेदसृक् १७१ नसीदन्ना-
पि धर्मेण मनोधर्मे निवेश
येत् अधार्मिकानां पापाना
माशुपश्यन्विपर्ययं १७२ ॥

में रतहै सो इसलोकमें सुखको नहीपाते १७० अधार्मि
कोंका और पापियोंका धन आदिका शीघ्र नाश देखा
ते हुए धर्मसे कष्टको पाकेभी अधर्ममें प्रवृत्त नहोवे १७२

अधर्म शीघ्रही नही फलता गौ अर्थात पृथिवी की
न्याई जैसे पृथिवी बीज बोनेसे शीघ्र फलको नही
देती किंतु कालपाके देतीहै यह दृष्टान्त समान
धर्मकाहै और दूसरा अर्थगा अर्थात् पशु जैसे वाह
न दोहनसे पशु शीघ्र फलको देताहै तैसा अधर्म
नही फलको देता किंतु कालपाके फलताहै यह
दृष्टांत असमान धर्मकाहै अधर्म करनेवालेको स

नाधर्मश्चरितो लोके सद्यः फ
लति गौ रिव शनै रावर्तमा
नस्तु कर्तु र्मूलानि कृन्तति
१७२ यदि नात्मनि पुत्रेषु न
चेत्पुत्रेषु नप्तृषु नत्वेव तु
कृतो धर्मः कर्तु र्भवति निः
ष्फलः १७३ अधर्मेणैधते ता
वत्ततो भद्राणि पश्यति त
तः सपत्नान् जयति स मू
लस्तु विनश्यति १७४ ॥

र्वनाश होताहै यही फल अधर्मकाहै १७२ जब अ
धर्मका फल अधर्मकरने वालेको न भया तो उसको
पुत्रको होताहै उसको भी न भया तो पौत्रको होता
है अधर्मके फल नही रहता १७३ अधर्म करनेसे
पहिले वढताहै फेर कल्याण को देखताहै फेर श
त्रुओंको जीतताहै पश्चात् मूल सहित नाशको पा
ताहै १७४ भले लोगोंका आचार सत्यधर्म पवित्रता

म॰
स्मृ॰ टी॰
भा॰
१६२

162

इन सभोंमें सर्वकाल रतिकोंकरै भार्या पुत्र दास छा
त्र इन सबको रस्सी डोर वांसका फलटा इन दोनोंसे
शासन अर्थात् ताडनकोंकरै वाणी बाहु उदर इन्हों
का संयम करै वाणीका संयम सत्यभाषणसे होता
है बाहुके बलसे किसीको पीडा नकरै तबबाहुका
संयम होताहै जो अन्न मिला थोडा बहुत उसीके ।

सत्यधर्मार्य्यवृत्तेषु शौचे चैवा
रमेत्सदा शिष्यांश्च शिष्याद्ध
र्मेण वाग्बाहूदरसंयतः १७५
परित्यजे दर्थकामौ यौ स्यातां
धर्मवर्जितौ धर्मञ्चाप्यसुखो
दर्कं लोक विक्रुष्टमेव च १७६
न पाणिपाद चपलो न नेत्र
चपलोऽनृजुः न स्याद्वाक् च
पलश्चैव न परद्रोह कर्मधीः
१७७ ॥

भोजनसे उदरका संयम होताहै धर्मसे वर्जित जो
अर्थकामहैं उसका त्याग करना जो है तो धर्म परं
तु लोकसे विरुद्धहै और आने वाला कालमें सुखे
का देनेवाला नहींहै उसकाभी त्याग करना १७६
हाथ पांव आंख वाणी इन सभोंको करके चंचल नहो
वे टेढा नरहै परद्रोह कर्ममें बुद्धिको न लावै १७७

बहुत प्रकारका शास्त्रार्थ संभव सेते पितृ पितामहा
दि करके संगृहीत जो शास्त्रार्थ है इसीका अनुष्ठान
करना इस करके अधर्मसे मारा नही जाता १७८ ऋ
त्विक् पुरोहित आचार्य मामा अतिथि आश्रित बाल

येनास्य पितरो याताः येनया
ताः पितामहाः तेन यायात्
सतां मार्गं तेन गच्छन्न रिष्य
ते १७८ ऋत्विक् पुरोहिताचा
र्यै मातुलातिथि संश्रितैः बा
लवृद्धातुरै र्वैद्यैर्ज्ञाति संबंधि
बांधवैः १७९ माता पितृभ्यां
जामीभि र्भ्रात्रा पुत्रेण भार्य
या दुहित्रा दास वर्गेण वि
वादं न समाचरेत् १८० ॥

वृद्ध आतुर वैद्य जाति अर्थात् पितृपक्ष वाले संबंधी
अर्थात् साला आदि बांधव अर्थात् मातृपक्षवाले १७९
माता पिता भाई यामि अर्थात् भगिनी पतोहू आदि
पुत्र भार्या बेटी दासवर्ग इन्होंके साथ विवाद न करना
१८०

म०
स्मृ० टी०
भा०
१६३

इन्होंसे विवादको वर्जन करके सब पापसे छूटता है इन सभोंसे हारनेसे सब लोकको गृहस्थ जीतताहै ।८१। आचार्य्य पिता अतिथि ऋत्विक् ये सब क्रम करके ब्रह्मलोक प्रजापति लोक इंद्रलोक

163

एतै र्विवादा न्संत्यज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते एभिर्जितश्च जयति सर्वान् लोकानिमा गृही ८१ आचार्य्यो ब्रह्मलोकेशः प्राजापत्ये पिता प्रभुः अतिथि स्त्विंद्र लोकेशो देवलोकस्य चर्त्विजः ८२ यामयोप्सरसां लोके वैश्वदेवस्य बांधवाः संबंधिना ह्यपांलोके पृथिव्यां मातृ मातुला ८३ ॥

देवलोकके स्वामी हैं ।८२। बहिनि पतोहू आदि बांधव संबंधी माता और माया ये दोनों सब क्रम करके अप्सरालोक वैश्वदेवलोक वरुणलोक मृत्युलोकके स्वामी हैं ।८३।

बाल वृद्ध कृश आतुर ये चारो आकाश लोकके स्वा
मीहै ज्येष्ठ पिताके समानहै भ्राता पुत्र अपनी शरीर
है १८४ दासवर्ग अपनी छायाहै लडकीगरीबहै इस

आकाशेशास्तु विज्ञेया बाल
वृद्धकृशातुराः भ्राता ज्येष्ठः
समः पित्रा भार्य्या पुत्रः स्वका
तनुः १८४ छाया स्वो दासव
र्गश्च दुहिता कृपणं परं त
स्मादेतैरधिक्षिप्तः सहेता सं
ज्वरः सदा १८५ प्रतिग्रह सम
र्थोऽपि प्रसंगं तत्र वर्जयेत प्र
तिग्रहेण ह्यस्याशु ब्राह्मं तेजः
प्रशाम्यति १८६ ॥

लिये इन सभोंकी बातको सहन करना मनमें हीनता
और दुःखको नलाना सर्वकालमें १८५ दानलेनेमें सम
र्थहो तोभी नलेवे दानलेनेसे ब्रह्मतेज शांत होताहै १८६

आपतकालमें क्षुधा करके दुःखितहो तोभी प्रतिग्रहमें द्रव्योंका विधान जो धर्म करिके युक्तहै अर्थात् ग्रहणकी जोवस्तुहै उसका देवता और मंत्रहै उसको विना जाने अच्छे लोग जोहैं सो प्रतिग्रहको न करैं हिरण्य भूमि घोड़ा गौ अन्न वस्त्र तिल घृत इन सबोंमेसे कोई एक वस्तुको प्रतिग्रह करनेसे मूर्ख

न द्रव्याणामविज्ञाय विधिंधर्म्यं प्रतिगृह्ये प्राज्ञः प्रतिग्रहं कुर्यादवसीदन्नपि क्षुधा १८७ हिरण्यं भूमिमश्वं गामन्नंवासस्तिलान्घृतं प्रतिगृह्णन्नविद्वांस्तु भस्मीभवति दारुवत् १८८ हिरण्यमायुरन्नं च भूर्गौश्चाप्योषतस्तनुम् अश्वश्चक्षुस्त्वचंवासो घृतंतेजस्तिलाः प्रजाः १८९ ॥

ब्राह्मण लड़कीकी न्याई भस्म हो जाताहै १८८ हिरण्य और अन्न दोनोंमेंसे कोई एक वस्तुका प्रतिग्रह मूर्ख ब्राह्मण करै तो आयुषका दहन होताहै इसी रीतिसे गौ भूमि शरीरको दहन करतेहैं घोड़ा नेत्रको वस्त्र त्वचाको घृत तेजको तिल संतति दहन करतेहैं ॥

तप ग्रौर वेदसे रहितहै प्रतिग्रहमें रुचि रखतीहै ऐसा
ब्राह्मण दाता सहित डूबताहै जैसे जलमें पत्थरकी
बनाई नौका १९. इसलिये मूर्ख ब्राह्मण थोडे प्रति-
ग्रहसेंभी डरतारहै नहीं तो जैसे गौकादेमें फंसी

अतपास्त्वनधीयानः प्रतिग्र
हरुचि र्द्विजः अम्भस्यश्म प्ल
वेनैव सहतेन नैव मज्जति १९.
तस्मादविद्वा न्बिभिया द्यस्मा
त्तस्मा त्प्रतिग्रहात् स्वल्पके
नाप्यविद्वान्हि पंके गौ रिव
सीदति ।२०। न वार्यपि प्रय
च्छेत वैडाल व्रतिके द्विजे
नवक व्रतिके विप्रे नावेद
विदि धर्मवित् २१ ॥

हुई कष्टको पातीहै ऐसा वहभी कष्टको पाताहै
बैडाल व्रतिक बक व्रतिक मूर्ख ये तीनों ब्राह्मणों
को धर्म जाननेवाला पुरुष जल मात्रभी नदेवै २१

विधिसे अर्जित धनको इन तीनोंको जब देवै तब प
र लोकमें वह दान दाता प्रतिगृहीताको अनर्थके
लिये होताहै ॥१९४॥ जिस प्रकारसे पत्थरकी बनाई हु
ई नावपर चढकर जलमें डूबताहै तिसी प्रकारसे
दाता प्रतिगृहीता दोनों नरकमें डूबतेहै ॥१९४॥ धर्म
ध्वजी अर्थात् जो बहुत मनुष्यके समीप धर्मका
आचरण करताहै आपसे अथवा दूसरेसे जानाता

त्रिष्वप्येतेषु दत्तं हि विधिना
प्यर्जितन्धनम् दातुर्भवत्य
नर्थाय परत्रा दातुरेव च ॥१९४॥
यथाप्लवेनौपलेन निमज्ज
त्युदके तरन् तथा निमज्जतो
धस्तादज्ञौ दातृप्रतीच्छकौ
॥१९४॥ धर्मध्वजी सदालुब्धश्छा
द्मिको लोकदंभकः वैडाल
व्रतिको ज्ञेयो हिंस्रः सर्वाभि
संधकः ॥१९५॥

है उसका धर्म जोहै सोई ध्वज कहिए चिन्हहै इसलि
ये वह धर्मध्वजी कहाताहै लोभी बहानेसे चलनेवा
ला वंचना करने वाला छाद्मिक अर्थात् घात करनेवा
ला सबका निंदा करने वाला ऐसा जो है सो वैडालव्र
तिक कहाताहै अर्थात् विलावकी न्याई घात कहि
ए आचरणहै जिसका सो ॥१९५॥

नीचही देखने वाला निष्ठुर अर्थात् दया शून्य अप
ने अर्थके साधनेमें तत्पर ढेठाईसे रहने वाला झू
ठही नम्रता से रहने वाला ऐसा जो है सो बक व्र
तिक कहाताहै अर्थात् बगलाकी न्याई व्रत कहि
ए आचरणहै जिसकासो ॥१९६॥ बक व्रतिक वैडाल

अधोदृष्टि र्नैष्कृतिकः स्वार्थ
साधन तत्परः शठो मिथ्या वि
नीतश्च बक व्रतचरो द्विजः
॥१९६॥ ये बक व्रतिनो विप्रा येच
मार्जार लिंगिनः तेपतन्त्यन्ध
तामिस्रे तेन पापेन कर्मणा
॥१९७॥ नधर्मस्यापदेशेन पापं
कृत्वा व्रतं चरेत् व्रतेन पापं
प्रच्छाद्य कुर्वन् स्त्री शूद्र दम्भ
नम् ॥१९८॥

व्रतिकये दोनों अपने पापसे अंधतामिस्र नाम नरक
में जातेहैं ॥१९७॥ पाप करके धर्मके बहानेसे व्रतको
भ देखताहै कि मैंने धर्म कियाहै ॥१९८॥
नकरै अर्थात् करताहै प्रायश्चित्त और स्त्री शूद्रको द

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
१६६

166

वेद पढनेवाले पुरुष इस लोकमें परलोकमें ऐसी ब्राह्मणोंकी निंदा करतेहैं कपटसे ब्रत जो है सो रावसोंके पास जाताहै १९९ ब्रह्मचारी नहीहै और ब्रह्मचारीके वेषसे जीवन करताहै सो ब्रह्मचारीके पापको पाताहै और कीट पतंग आदि योनिमें जाता

ऐसेद्विजवेदविदो विद्यागर्ह्यन्ते ब्रह्मवादिभिः छद्मना चरितं यच्च व्रतं रक्षांसि गच्छति १९९ अलिंगी लिंगिवेषेण यो वृत्तिमुपजीवति स लिंगिनां हरत्येनस्तिर्यग्योनौ च जायते २०० परकीय निपानेषु न स्नायाच्च कदाचन निपान कर्तुः स्नात्वा तु दुष्कृतांशेन लिप्यते २०१ ॥

है इसी रीतिसे सब आश्रमको जानना २०० जो विना उत्सर्ग किया हुआ परका खनाया बावली हउआ तलाव आदिहै उसमे नहाना नही क्यौंकि खनानेवालेको पाताहै पापको ॥ २०१

सवारी शय्या कूप वगीचा गृह यह सब जिसकाहै उसके आज्ञा विना इन सभोंका भोगजो करताहै सो जिसके ये सबहै उसके पापका चतुर्थांश भागी होताहै २-२ नदी देवतोंका खनाया हुआ तलाव सर अर्थात् चार हाथका धनुष होताहै आठ हजार धनुष तक जिसकी गति नहीहै सोउ रना गडहा इन सभोंमे नित्यही स्नान करै इस स्थलमें ऐसा संदे

यानशय्या सनान्यस्य कूपोद्यान गृहाणि च अदत्ता न्युपभुं-जान एनसः स्या त्तुरीय भाक् २-२ नदीषु देव खातेषु तडागेषु सर स्सुच स्नानं समाचरे न्नित्यं गर्त प्रस्रवणेषु च २-३ ॥

हहो सकताहै कि इसी वचन करके पराये खाना या हुआ बाउली आदिका निषेध सिद्धरहा फेर पूर्व वचनकाहै को कहो तो इसका उत्तर यहहै कि अपना खनाया हो ग्रेर सब जीवोंको लिये उत्सृष्ट हो अर्थात् त्याग किया गया हो तो उसमें स्नान करनेकी आज्ञाहै सो भी नदी आदिके अभावमें जानना २-३ ॥

म० स्मृ० टी० भा० १६७

167

यम नियम इन दोनोंका लक्षण आगे कहेंगे तिस
में यमको नित्यही सेवन करै नियमको नही यम
को छोडके केवल नियमके सेवन करनेसे पतित
होताहै २०४ मूर्ख ग्रामके याग कराने वाला स्त्री ।

यमान्सेवेत सततं न नित्यं ।
न्नियमान्बुधः यमान् पतत्य
कुर्वाणो नियमान् केवलान्
भजन् २०४ नाश्रोत्रिय तते
यज्ञे ग्रामयाजिकृते तथा स्त्रि
या क्लीबेन च हुते भुञ्जीत ब्रा
ह्मणः क्वचित २०५ अश्लीक मे
तत्साधूनां यत्र जुह्वत्यमी ह
विः प्रतीप मेतद्देवानां तस्मा
त्तत्परि वर्जयेत २०६ ॥

नपुंसक इन सभोंके यज्ञमें ब्राह्मण कभीन भोजन
करै २०५ इन सभोंके यज्ञकरना भली लोगोंको अश्री
करैहै अर्थात लक्ष्मी रहितहै और देवतोंके प्रतिकूल
है अर्थात प्रसन्न नहीहै इसलिये इसकर्मको वर्जन
करना २०६ ॥

मत्त क्रुद्ध आतुर इन्होंका अन्न भोजन न करना केश कीट करके मिले अन्नको और इच्छासे पांव करके छुआ गया जो अन्नहै उसको भोजन नहीं करना १७ गर्भके नाश करने वालेसे देखागया रजस्वलासे छुआ गया चिडियाके चंचुसे फेडागया कुत्तासे छुआ

मत्तक्रुद्धातुराणां च न भुंजीत कदाचन केशकीटावपन्नं च पदास्पृष्टं च कामतः १७ भ्रूणघ्ना वीक्षितं चैव संस्पृष्टं चाप्युदक्यया पतत्रिणावलीढं च शुना संस्पृष्टमेव च १८ गवाचान्नमुपघ्रातं घुष्टान्नं च विशेषतः गणान्नं गणिकान्नं च विदुषा च जुगुप्सितम् १९

गया १८ गौका सूंघा को भोजन करेगा ऐसा भारी शब्द करके यज्ञआदिमें जो दिया गया ऐसा जो अन्न और समुदायका अन्न वेश्यांका अन्न इन सब अन्नोंका निंदा करतेहैं पंडितलोग चोर गाने वाला

बढई ब्याजसे जीनेवाला यज्ञमें दीक्षित अर्थात् यज्ञ
करताहै और यज्ञ समाप्ति नहीहुईहै कृपण बेडीमें
जो पडाहै २१० दोषी नपुंसक व्यभिचारिणी दंभी इ
न सभोंका अन्न शुक्त अर्थात् कालबीतनेसे और दूस
रे वस्तु मिलाये बिना जो आमिलहोगयाहै बासी

स्तेन गायन योश्चान्नं तक्ष्णो
वार्द्धुषिकस्य च दीक्षितस्य क
दर्य्यस्य बद्धस्य निगडस्य च ।
२१० अभिशस्तस्य षण्ढस्य पुं
श्चल्या दाम्भिकस्य च शुक्तं प
र्युषितं चैव शूद्रस्योच्छिष्ट
मेवच २११ चिकित्सकस्य मृग
योः क्रूरस्योच्छिष्ट भोजिनः
उग्रान्नं सूतिकान्नं च पर्य्याचा
न्त मनिर्दशं २१२ ॥

शूद्रका जूठा २११ वैद्य व्याधा क्रूर जूठ भोजन कर
नेवाला इन सभोंका अन्न सूतिका अर्थात् सौरीमें
जो स्त्रीहै कर्मके लिये किया गया जो अन्न एक पंक
तिमें बैठा पुरुषहै उसका अपमान करके भोजन
करने लगे और दूसरेने भोजनके समाप्तिकी आचम
नकी उससमयका अन्न सूतकीका अन्न २१२ ॥

ए्नाके योग्य है उसको अनादर करके दिया गया जो
अन्न देवता आदिके लिये जो अन्न मांस नही वनी सो
मांस पति पुत्र रहित स्त्री शत्रु नगरी पतित इनोंका
अन्न छेक जिसपर पडी ऐसा जो अन्न २१३ चुगल झू
ठा यज्ञका वेचने वाला अर्थात् मैने जो यागकी।

अनिर्चितं वृथा मांस मवीरा॰
याश्च योषितः द्विषदन्नन्नग॰
र्यन्नं पतितान्न मवक्षुतम् १३
पिशुना न्नृतिनो श्चान्नं क्रतु॰
विक्रियण स्तथा शैलूषतुन्न
वायान्नं कृतघ्नस्यान्न मेवच
१४ कर्मारस्य निषादस्य रंगा
वतारकस्य च सुवर्णकर्तुर्वे
णस्य शस्त्र विक्रयिण स्तथा
२१५

है उसका फल तुमको होवे ऐसा कहके उससे रुप
या लेने वाला नट दरजी उपकारको न मानने वा
ला २१४ हो लोहार निषाद अर्थात् जो दशाई अथा
यमें कहैंगे नट गायन छोडकर इन्होंके कर्मसे जी
ने वाले सो नार वेसफोर हथियारके वेचने वाले २१५

म०
स्म० टी०
भा०
१६६

169

कुतासे जीनेवाले कलार धोबी रंगरेज वालक जि-
सकेगृहमें उपपति अर्थात् दूसरा पति है २१६ जो उ
पपतिको सहतेहैं और जो स्त्रियोंसे जीते गएहैं मर
न दिनसे दशदिन जिसका बीतानहीं है इनोंका अ

श्ववतां शौण्डिकानां च चैल
निर्णेजकस्य च रंजकस्य नृ-
शंसस्य यस्य चोपपतिर्गृहे
२१६ मृष्यन्ति ये चोपपतिं स्त्री
जितानां च सर्वशः अनिर्द-
शं च प्रेतान्नमतुष्टिकरमेव
च २१७ राजान्नं तेज आदत्ते
शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसं आयुः सु
वर्णकारान्नं यशश्चर्मावक
र्तिनः २१८ ॥

न्न और जो अन्न तुष्टिको नहीकरताहै सोइन सब अ
न्नोंका भोजन नहीं करना २१७ राजाशूद्र सोनार च
मार इन्होंका अन्न क्रमसे तेज ब्रह्मतेज आयुष यश
इनका नाशकरताहै २१८ ॥

कारुक अर्थात् ढाल बनाने वाला धोबी इन दोनों
का अन्न क्रमसे संतति बल इनोंका नाश करताहै
समुदाय और वेश्या इन दोनोंका अन्न दूसरे कर्मसे
मिलने वाला जो स्वर्गादि लोग उसको नाश करता
है ११९ वैद्य अभिचारिणी आजसे जीनेवाला हथि
यारका वेचने वाला इन्होंका अन्न क्रम करके पीव
वीज विष्टा खंखार आदि मल कहलाताहै १२० जित

कारुकान्नं प्रजोहंति बलं नि
र्णेजकस्य च गणान्नं गणिका
न्नं च लोकेभ्यः परिकृन्तति १
१९ पूयं चिकित्सिकस्यान्नं पुं
श्चल्यास्त्वन्नमिन्द्रियं विष्टा वा
र्धुषिकस्यान्नं शस्त्रविक्रयि
णो मलं १२० य एते न्ये त्वभो
ज्यान्नाः क्रमशः परिकीर्ति
ताः तेषां त्वगस्थिरोमाणि
वदन्त्यन्नं मनीषिणः १२१ ॥

ने ये सब क्रमसे अभोज्यान्न अर्थात् जिनका अन्न भो
जनके जोग्य नही कहि आये है हर एक पदमें इनसे
भिन्न जो इस प्रकरणमें अभोज्यान्न पठित है तिनका
अन्न त्वचा हाड़ रोम कहाताहै यह पंडित लोक कह
तेहै अर्थात् रोम आदिके भोजन करनेसे जो दोष
होताहै सो दोष इन्होंके अन्नको भोजन करनेसे हो
ताहै १२१

170

इन्होंमें किसीके अन्नको विना जाने भोजन करै तो तीनदिन उपवासकरे और जानके भोजन करै तो कृच्छ्रव्रतजो आगे कहैंगे सो करै और विष्टा मूत्र के भोजन करनेमें भी पृथक् पृथक् वही व्रतक रै २२२ पण्डित जो ब्राह्मणहै सो शूद्रका पक्वान्न

भुक्त्वातोन्यतमस्यान्न ममत्या
क्षपणं त्र्यहं मत्या भुक्त्वाचरे
त्कृच्छ्रं रेतो विण्मूत्रमेव च २२२
नाद्या च्छूद्रस्य पक्वान्नं विद्वा
नश्राद्धिनो द्विजः आददीता
ममेवास्मा दवृत्ता वेकरात्रिकं
२२३ श्रोत्रियस्य कदर्यस्य व
दान्यस्य च वार्द्धुषेः मीमांसि
त्वोभयं देवाः सममन्न मक
ल्पयन् २२४ ॥

भोजन नकरे कदाचित् गृहमें अन्न न हो तो एकरात्रि के भोजन योग्य कच्चा अन्नको ग्रहणकरै २२३ कृपण वेदपाठी दाता व्याजलेकी जीनेवाला इन दोनों के अन्नको देवतोंने विचारकरके समकहाहै उन

देवतोंके समीप ब्रह्मा आके कहाके विषमको सम
मतिकरो दाताका अन्नसे पवित्रहै कृपणका अन्न अ
श्रद्धासे हनतेहै ११५ आलसको छोडकर श्रद्धासे नि
त्यही इष्ट अर्थात यज्ञ पूर्त अर्थात बाउली कूप त

तान्प्रजापति राहेत्य माकृढ्वं
विषमे समे श्रद्धापूतं वदान्य
स्य हतमश्रद्धये तरत् ११५ ।
श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च नित्यं कु
र्यो दतंद्रितः श्रद्धाकृते ह्यक्ष
येते भवतः स्वागतैर्धनैः ११६
दानधर्मं निषेवेत नित्य मै
ष्टिक पौर्तिके परितुष्टेन भा
वेन पात्र मासाद्य शक्तितः १
१७ ॥

रागादिको छोड न्यायसे अर्जित धन करके श्रद्धासे
किए गए ये दोनो कर्म अक्षय होतेहै ११६ अच्छे
ब्राह्मणोंके पाके शक्ति पूर्वक संतुष्ट भावसे नित्य
ही दान इष्ट पूर्त इन्होंको करै ११७ ॥

म० स्मृ० टी० भा० १७१

171

स्पृहया अर्थात् गुणमें दोषका प्रकट करनासे रहि-
त होके मागने वालोंको यथाशक्ति अन्न दियाकरै
क्यों कि नित्यही जब दिया करैगा तो कोई समयमें
ऐसा पात्र आवेगा जो चारो ओरसे तारैगा ११८ अन्न

यत्किंचिदपि दातव्यं याचिते
नानसूयया उत्पत्स्यते हि तत्
पात्रं यत्तारयति सर्वतः ११८
वारिद स्तृप्ति माप्नोति सुख म
क्षय्य मन्नदः तिलप्रदः प्रजा
मिष्टां दीपदश्चक्षु रुत्तमम् ११९
भूमिदो भूमि माप्नोति दीर्घ मा
यु र्हिरण्यदः गृहदो ऽग्र्याणि वे
श्मानि रूप्यदो रूप मुत्तमं २०

तिल दीप इन्होंका देनेवाला क्रमसे भूमि अभीष्टफ
ल अच्छी संतति उत्तम नेत्र इन्होंको पाताहै ११९ भूमि
हिरण्य गृह रूप्य इन्होंका देनेवाला क्रमसे भूमि ब
डी आयुष अच्छा गृह उत्तम रूप इन्होंको पाताहै २०

वस्त्र घोडा बैल गौ इन्होंका देनेवाला क्रमसे चंद्र
लोक अश्विनी कुमार लोक पुष्टलक्ष्मी सूर्यलोक
इन्होंको पाताहै २१। सवारी शय्या अभय धान्यदे
द इनोके देनेवाला क्रमसे भार्य्या ऐश्वर्य्य निरंतर

वासोदश्वेंद्रसालोक्य मश्विसा
लोक्य मश्वदः अनड्डहः श्रि॰
यम्पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्ट॰
पम् २१ यान शय्या प्रदो भा
र्य्या मैश्वर्य्य मभयप्रदः धान्य
दः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्र॰
ह्म साष्टितां २२ सर्वेषा मेवदा
नानां ब्रह्मदानं विशिष्यते
वार्यन्न गो मही वास स्तिल॰
कांचन सर्पिषाम् २२ ॥

सुख ब्रह्मलोकके समान गति इन्होंके पाताहै ।२१। ज
ल अन्न गौ भूमि वस्त्र तिल हिरण्य घी इन सब दानों
मे वेद दान बडाहै । २२ ॥

म॰ स्त॰ टी॰ भा॰ १७२

जिस जिस भावसे जो जो दान देताहै उस उसको उसी भावसे जन्मांतरमे पाताहै ३३४ जो पूजित वस्तुको देताहै दोनौ स्वर्गमे जातेहै ३३५ तप क

172

येन येन तु भावेन यद्यद्दानं प्रयच्छति तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः ३३४ योर्चितं प्रति गृह्णाति ददात्यर्चितमेवच तावुभौ गच्छतः स्वर्गं नरके तु विपर्यये ३३५ न विस्मयेन तपसा वदेदिष्ट्वा च नानृतम् नार्तोप्यपवदेद्विप्रान्न दत्वा परिकीर्तयेत् ३३६ ॥

रके गर्वको न करै यज्ञकरके झूठ न बोले दुःखित हो के ब्राह्मणको अपवाद न करै दानदेके न कहै ३३६ ॥

झूटबोलना गर्वकरना ब्राह्मणका अपमान करना कहना इन सबोंसे क्रमकरके यज्ञ तप आयुष दान इन्होंका नाश होताहै २३७ सब जीवको पीडा न होने पावै ऐसी रीतिसे परलोकके सहायके लि

यज्ञो ऽनृतेन क्षरति तपः क्ष
रति विस्मयात् आयु र्विप्राप
वादेन दानं च परिकीर्तना
त् २३७ धर्मं शनैः संचिनु
या द्वल्मीक मिव पुत्तिकाः
परलोक सहायार्थं सर्वभू
तान्यपीडयन् २३८ नामुत्र
हि सहायार्थं पिता माता
च तिष्ठतः न पुत्र दारं न
ज्ञाति धर्मस्तिष्ठति केवलः
२३९ ॥

ये धर्मको बटोरै जैसी चिउंटी बे मउढको बटोरती है २३८ माता पिता पुत्र भार्य्या जाति ये सब परलोकमें सहायके लिये नही रहते केवल धर्म ही रहताहै २३९ ॥

म॰
स्मृ॰टी॰
भा॰
१२३

173

एकै उत्पन्न होताहै एक सुकृत अर्थात् पुण्यको भोग
करताहै एक दुष्कृत अर्थात् पापके भोग करताहै
काट ढेलाके सदृश मृतक शरीरको पृथिवीमें त्या
ग करके बांधव लोग विमुख होतेहैं धर्म उसके

एकः प्रजायते जन्तु रेक एव
प्रलीयते एकोनु भुंक्ते सुकृ॰
ते मेक एव च दुष्कृतम् ४०
मृतं शरीर मुत्सृज्य काष्ठ॰
लोष्ठ समं क्षितौ विमुखा॰
बांधवा यांति धर्मस्त मनु॰
गच्छति ४१ तस्मा द्धर्मं सहा
यार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः
धर्मेण हि सहायेन तमस्त
रति दुस्तरम् ४२ ॥

पीछे चलाजाताहै ४२ इसलिये महाधर्महै प्रधा
न जिसको एसा जो पुरुषहै और तप करके जि
सका पापनष्टहै ॥

वह ब्रह्म स्वरूप है उसको वही उत्कृष्ट स्वर्ग आदि
लोकमें फटपट लेजाताहै १४२ कुलकी वडाई
देनेके लिये उत्तम उत्तम पुरुषोंके साथ संबंध
को करै अधर्मके साथ संबंधको त्यागकरै १४४

धर्म प्रधानं पुरुषं तपसा ह
त किल्बिषं परलोकं न प-
त्याशु भास्वंतं ख शरीरिणं
१४३ उत्तमै रुत्तमै र्नित्यं स
म्बंधाना चरेत्सह निनीषुः
कुलमुत्कर्ष मधमान धर्मा
स्त्यजेत् १४४ उत्तमा नुत्तमा
नु गच्छन् हीनो हीनांश्च व
र्जयन् ब्राह्मणः श्रेष्ठता मेति
प्रत्यवायेन शूद्रताम् १४५

उत्तम उत्तमसे संबंधको करते हुए हीन हीनसे सं
बंधको छोड़ते हुए श्रेष्ठताको ब्राह्मण पाताहै औ
र इससे शूद्रताको पाताहै १४५ ॥

म॰
स्व॰टी॰
भा॰
१२४

जिस कार्यका आरंभ किया उस कार्यको समाप्ति करने वालेको मल स्वभाववाला शीत याम आदि जोड़ा जोड़ा जो वस्तुहै उसको सहने वाला इंद्रियों को विषयोंसे रोकनेवाला कुराचारवाले पुरुषों के साथ संबंधको छोड़नेवाला हिंसासे निवृत्त रहनेवाला दानकरनेवाला स्वर्गको पाताहै ४७। लकड़ी जल मूल फल अन्न मधु अभय ये सब

हृष्टकारी सदृदांतः क्रूराचा रैः रसंवसन् अहिंस्रो दमदा नाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथा व्रतः ४७ एधोदकं मूलफल मन्न मभ्युदितं च यत् सर्वतः प्र तिगृह्णीया न्मध्वथा भय द क्षिणाम् ४८ आहृता भ्युद्य तो भिक्षा पुरस्तादप्रचोदिता मेने प्रजापति ग्रीह्या मपिदु ष्कृत कर्मणः ४८ ॥

विना मांगे जब मिले तो उसको और व्यभिचारिणी नपुंसक पतित शत्रु इनको छोड़के सबसे ग्रहण न शूद्र आदिसे लेना ४८ यह वस्तु तुमको देंगे ऐसा देनेवालेने पहिले न कहाहो और लेनेवालेके समीपमें स्थापितहो विना मांगे प्राप्तहो ऐसाजो सुवर्ण आदि वस्तु उसको पतित आदिको छोड़कर दुष्कृत कर्म

वालेसेभी लेना ऐसा ब्रह्मा मानतेहैं ४८॥

ऐसी भिक्षाको जो ग्रहण नही करताहै उसका दि
या हुआ हव्य कव्यको देवता पितर पंद्रह वर्षत
क ग्रहण नही करते १४॥ शय्या गृह कुश गंध ज
ल पुष्प मणि दधिलाई मछली दूध मांस शाक
इन सभोंका त्याग न करना ५॥ माता पिता सेवक

नाश्नन्ति पितरस्तस्य दशवर्षा
णि पंचच नच हव्यं वहत्यग्नि
र्यस्तामभ्यवमन्यते १४ ॥
शय्यां गृहान्कुशान्गंधा
नापः पुष्पं मणीन्दधि धाना
मत्स्यान्पयो मांसं शाकं चै
व न निर्णुदेत् १५॥ गुरून्
भृत्यांश्चोज्जिहीर्षन्नर्चिष्य न्दे
वतातिथीन् सर्वतः प्रतिगृ
ह्णीयान्नतु तृप्येत्स्वयं ततः
॥ १६ ॥

भार्या आदि ये सब क्षुधामें पीडितहो तो इन्होंका उ
द्धार करनेके इच्छाकरना और देवता अतिथिकी स
जेनेकी इच्छा करत पतित आदिको छोडकर सब
सो प्रतिग्रहकरे उसको आप भोजन न करे १५॥ ॥

म॰ माता पिता आदिके मरे हुए अथवा जीते हुएको छो
स्म॰टी॰ डकर दूसरे स्थानमें वास करत अपने जीविकाके
भा॰ लिये साधु लोगोंसे ग्रहणकरै ५२ जो शूद्र जिसकी
१७५ खेती करताहै उस शूद्रका अन्न उसके भोजन करने

175

गुरुषु त्वभ्यतीतेषु विना वा तै
र्गृहे वसन् आत्मनो वृत्ति म॰
न्विच्छ गृह्णीया त्साधुतः सदा
५२ आर्द्धिकः कुलमित्रं च गो
पालो दासना पितौ एते शूद्रे
षु भोज्यान्ना यश्चात्मानं निवे
दयेत् ५३ यादृशोऽस्य भवेदा
त्मा यादृशं च चिकीर्षितं य
था चोपचरेदेनं तथात्मानं
निवेदयेत् ५४ ॥

के योग्य है जो शूद्र कुलका मित्र है और गोपालदास
नाऊ और जिस शूद्रने अपने आत्माको समर्पणकी है
इन सभोंका अन्न भोजन करनेको योग्य है ५४ ॥

जिस शूद्रका कुलशील आदिकरके जैसा स्वरूपहै ।
और जैसी करनेकी इच्छाहै जिसप्रकारसे सेवाकरना
योग्यहै तैसा वह शूद्र अपनेको कहै जो सज्जनोंके
मध्यमें अपने को छिपाताहै अर्थात् जैसाहै तैसा
नही कहताहै सो लोकमें बडापापकरनेवालाहै
और चोरहै अर्थात् अपने आत्माको चोरायाहै २५५
जितने अर्थहै सो सब वाणीमें रहतेहै औरउस ।

योन्यथा संत मात्मान मन्यथा
सत्सुभाषते स पापकृत्तमो लो
के स्तेन आत्मापहारकः २५५
वाच्यर्था नियता सर्वे वाङ्मूला
वाग्विनिःसृताः तांस्तुयः स्ते
नयेद्वाचं स सर्वस्तेयकृन्नरः
२५६ महर्षिपितृदेवानां गत्वा
नृण्यं यथा विधि पुत्रे सर्वं स
मासज्य वसे न्माध्यस्थ्य माश्रि ।
तः २५७ ॥

का वाणी मूलहै वाणीसे निकलतेहै उस वाणीको
जिसने चोराया सो सब वस्तुका चोराने वाला हुआ
२५६ देव ऋषि पितर इन तीनोंकी ऋणसे यथावि ।
धि छूटके सब वस्तुको पुत्रके अधीन करके मध्य
स्थ अर्थात् पुत्र स्त्री धन आदिमें ममताको छोडक
र ब्रह्मबुद्धि करके सर्वत्र समदर्शन को आश्रित ।
होकर रहर्द्दमें वासकरै २५७ ॥

म०
स्व० टी०
भा०
१२६

176

एकांतमे नित्यही अकेला अपनी आत्माके हितको
चिंतन करै इसमें परम कल्याणको पाताहै ब्राह्म-
का० ण गृहस्थकी यह नित्य वृत्ति कही जो बुद्धिका बढाने

एकाकी चिंतयेन्नित्यं विवि-
क्ते हितमात्मनः एकाकी
चिंतयानो हि परं श्रेयोधिग-
च्छति २५८ एषोदिता गृहस्थ
स्य वृत्तिर्विप्रस्य शाश्वती स्ना
तक व्रतकल्पश्च सत्ववृद्धि
करः शुभः २५९ अनेन विप्रो
वृत्तेन वर्तयन्वेदशास्त्रवित
व्यपेत कल्मषो नित्यं ब्रह्म-
लोके महीयते २६० ॥

इति मानवे धर्मशास्त्रे भृगु
प्रोक्तायां संहितायां चतुर्थो
ध्यायः ४

वाला स्नातकका व्रत वहभी कहा २५९ वेदशा-
स्त्रका जाननेवाला ब्राह्मण एवं कथित रीतिसे रहै
तो सब पापसे छूटकर नित्यही ब्रह्मलोकमे पूजितहोवै
२६०

यह मनुस्मृतीका पुस्तक श्रीमन्महाराजासाहिब रणवीरसिंह बहादुर जी सी एस आइ इंद्र महेंद्र सिपर सल्तनत जंबू काश्मीर व तिबतादिपतिके पढनेकाहै ॥

[illegible]

